नागरिक - विश्वविद्यालय

एक परिकल्पना

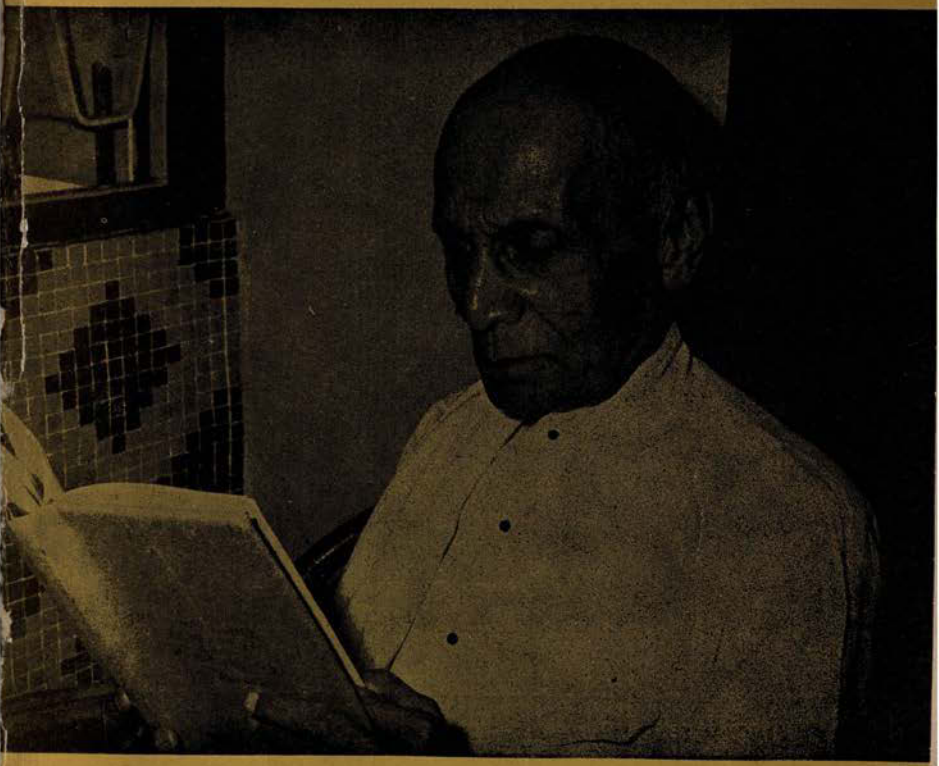

दादा धर्माधिकारी

नागरिक विश्वविद्यालय

•

आचार्य
दादा धर्माधिकारी

•

प्रकाशक
सर्व-सेवा-संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी

मुद्रक
वाराणसी मुद्रण संस्थान
सूरजकुण्ड, वाराणसी

दिसम्बर, १९८०]

[मूल्य : दो रुपये

नागरिक विश्वविद्यालय

नागरिक विश्वविद्यालय की कल्पना पूरे नागरिक जीवन को पुनः प्राणवान बनाने और सक्रिय करने की है। प्रचलित विश्वविद्यालय में लिखना-पढ़ना-गिनना सीखने के लिए जिस प्रकार से विभिन्न संकायों की स्थापना की जाती है उसी प्रकार से नागरिक विश्वविद्यालय में भी विभिन्न संकायों की स्थापना की जायगी। ये संकाय जीवन के हर पहलू और हर समस्या को स्पर्श करेंगे। उदाहरण के लिए नागरिक विश्वविद्यालय के कुछ संकायों का नाम इस प्रकार हो सकता है :—

१. सर्व धर्म समन्वय संकाय
२. राजनीति और लोकनीति संकाय
३. व्यवसाय और आपूर्ति संकाय
४. न्याय और सुरक्षा संकाय
५. लघु उद्योग संकाय
६. कृषि-गोपालन संकाय
७. सेवा संस्थान संकाय
८. दुर्व्यसन निवारण संकाय
९. मातृ मन्दिर संकाय
१०. बाल शिक्षा संकाय
११. विश्वविद्यालयीय शिक्षा संकाय
१२. स्वास्थ्य और सफाई संकाय

इसी प्रकार से जीवन में गर्भ-धारण से मृत्युपर्यन्त जितनी अवस्थाएँ और व्यवस्थाओं की आवश्यकता मनुष्य जीवन में होती है उन सब पर खुला और वैज्ञानिक चिन्तन नागरिक विश्वविद्यालय में किया जायगा। यह सारा कार्य पारस्परिकता के वातावरण में कैसे हो, खोज का विषय है।

२० नवम्बर से २७ नवम्बर १९८० तक वाराणसी में नागरिक विश्वविद्यालय अभियान यात्रा आम लोगों की दिलचस्पी का विषय रही। इसके पड़ाव नगर के तीन विश्वविद्यालयों और पाँच प्रमुख शिक्षा संस्थाओं में रहे।

आचार्य दादा धर्माधिकारी ने हर पड़ाव की सभा को सम्बोधित करते हुए नागरिक विश्वविद्यालय की रूपरेखा, उसकी आवश्यकता तथा पाठ्यक्रम आदि पर गहराई से सहचिन्तन किया। सहचिन्तन के बिन्दु नागरिक विश्वविद्यालय की पूर्व भूमिकासहित प्रस्तुत हैं।

नरेन्द्र भाई

नागरिक विश्वविद्यालय की पूर्व भूमिका

गाँधीजी के निधन के बाद सन् १९४९ में २४ दिसम्बर से ३१ दिसम्बर तक विश्व के शान्तिवादियों का एक सम्मेलन सेवाग्राम में किया गया था। सम्मेलन में इस विचार को मान्य किया गया कि विश्व की समस्याओं का हल शान्तिवादी तरीकों में ही है और उसके लिए गाँधी-विचार का आधार लेना होगा। इस क्रम में नयी तालीम का स्थान महत्त्व का है। विश्व शांतिवादी सम्मेलन ने 'बुनियादी शिक्षा तथा समाज-व्यवस्था पर विचार करने तथा कुछ क्रियात्मक सुझाव देने के लिए प्रख्यात ब्रिटिश शान्तिवादी श्री विल्फ्रेड वेलाक (WILFRED WELLOCK) की अध्यक्षता में एक आयोग कायम किया था। इस आयोग ने नये समाज की स्थापना के लिए जिस शिक्षण-पद्धति को स्वीकार किया उसका वर्णन यों किया गया है।'

"अब हमें बुनियादी शिक्षा के माध्यम से निर्मित समाज की प्रकृति तथा विस्तार पर भी चर्चा कर लेनी चाहिए। पहले हम उन मूल्यों पर ध्यान दें जो नयी तालीम स्थापित करना चाहती है। ये मूल्य अपनी आंतरिक एकता के प्रति विश्व स्तर पर परस्पराभिमुख रहनेवाले पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के मूल्य हैं, जहाँ मनुष्य उच्चतम स्वावलम्बन भी प्राप्त कर सके।"

ऐसा करने के लिए निम्नलिखित उद्देश्य सामने रखने होंगे--

(१) समाज का हर सदस्य एक दूसरे के प्रति सहज रूप से अभिमुख हो सके इस परिस्थिति का लघु समाज बनाना।

(२) सहकारी ढंग पर संचालित सामुदायिक लघु-उद्योगों का संयोजन करना।

(३) ऊर्जा और यंत्रों के सम्यक् उपयोग के लिए नयी-नयी औद्योगिक तकनीकी का विकास करना।

"उपरोक्त उद्देश्यों को पूर्ति करनेवाले लघु समुदायों के आर्थिक एवं सामाजिक संगठन का आधार ही उनको राजनैतिक जीवन का आधार भी प्रदान करेगा। वे लघु परिषदों द्वारा समाज के विभिन्न स्तरों की प्रकृति तथा आवश्यकताओं के अनुरूप काम करेंगे। ये लघु समुदाय अपनी परिधि तथा रचना के अनुसार स्वावलम्बी होंगे। अत्यधिक उन्नत औद्योगिक क्षेत्रों में, निस्सन्देह ही क्षेत्रीय नियोजन के आधार पर अनेक शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों को आवश्यक सेवायें प्रदान कर सकनेवाले लघु औद्योगिक समुदायों का गठन करना होगा। जहाँ ऐसी स्थिति न भी हो वहाँ भी यह क्षेत्रीय अर्थ-व्यवस्था लाभप्रद होगी। एक छोटे से कस्बे के इर्द-गिर्द गाँवों का एक छोटा-सा समूह उन सबके लिए विविधतापूर्ण तथा कलात्मक जीवन का एक सुन्दर सांस्कृतिक केन्द्र जैसा बन सकेगा। ये केन्द्र एक नये सृजनात्मक युग का सूत्रपात करेंगे।"

"कृषि को अनेक प्रकार के हस्तोद्योगों तथा लघु उद्योगों के साथ जोड़ देने से ये नयी सामुदायिक इकाइयाँ समुचित रूप से एक-दूसरे में गुथी हुई तथा अपनी पूर्णता में संतुष्टि प्राप्त करनेवाली होंगी। पशुपालन में, लघु कृषि औद्योगिक इकाइयों में, हस्तकलाओं में, संगीत, नाटक, साहित्य, कला, नृत्य आदि के माध्यम से व्यक्त विचारों तथा कल्पनाओं से सम्पन्न समुदाय निश्चित ही उसके हर व्यक्ति (सदस्य) के लिए असीम मूल्यवान सिद्ध होगा। यही सेवाग्राम विश्वविद्यालय का क्रांतिकारी सामाजिक कार्य होगा। (जो लोक जीवन के समस्त पहलुओं को स्पर्श करनेवाला विश्वविद्यालय होगा।)"

विश्वविद्यालय आयोग के एक महत्त्वपूर्ण सदस्य अमरीकी शिक्षाशास्त्री डॉ० आर्थर मॉर्गन थे। उन्होंने भी गाँधी-विचार याने बुनियादी शिक्षा के आधार पर ग्राम स्तर तक विश्वविद्यालय को ले जाने के सम्बन्ध में कहा था : "सेवाग्राम विश्वविद्यालय उक्त कल्पना को साकार करनेवाला होगा।

यह विश्वविद्यालय नयी तालीम के आदर्शों पर काम करेगा। कृषि, पशुपालन, सामाजिक स्वास्थ्य, यांत्रिकी आदि सामाजिक जीवन के सभी विषयों का इसमें पठन-पाठन, शोध और अध्ययन करने की सम्भावना रहेगी।" (यह अंश दि टाक्स आफ पीस मेकिंग (विश्व शान्ति सम्मेलन रिपोर्ट १९४९ से लिया गया है।)

२८ फरवरी से ५ मार्च १९५१ तक सेवाग्राम में फिर से सातवाँ अखिल भारत बुनियादी शिक्षा सम्मेलन किया गया, जिसमें इस तरह के विश्वविद्यालय के सवाल पर और डॉ० मॉर्गन समिति की रिपोर्ट पर भी विस्तार से विचार

किया गया। इस चर्चा में भाग लेनेवालों में पंडित जवाहर लाल नेहरू, मौलाना अबुलकलाम आजाद, पू० विनोबाजी, मद्रास के प्रसिद्ध शिक्षाविद् टी० अविनाशलिंगम्, आचार्य काका कालेलकर, किशोरलाल मश्रूवाला, डॉ० जो० स० कुमारप्पा आदि प्रमुख लोग थे।

इस अवसर पर विनोबाजी ने कहा था : "·····पूरे समाज के शिक्षण की कोई व्यवस्था होनी चाहिए। और इसी को हमने देहाती विश्वविद्यालय, विद्यापीठ--जो भी नाम दीजिये---कहा है। तो यह आवश्यकता स्वाभाविक तौर पर पैदा हुई है, इसलिए चाहे यह नाम बड़ा दीखता हो, हमारे लिए वह अनिवार्य है। इसको हमें करना ही चाहिए।"

उस समय प्रधानमन्त्री पं० जवाहर लाल नेहरू थे। उन्होंने जोर देकर कहा था : "मैं जवाहर लाल की हैसियत से कहता हूँ कि मेरे दिमाग में कोई शक नहीं है कि हमें इस बुनियादी तालीम के ही रास्ते से जाना है और शुरू में ७ साल तक की तालीम और उससे पहले पूर्व बुनियादी की ओर तो चलना ही है। उसके बाद भी हमको इसी आधार पर पूरे समाज के शिक्षण के लिए विश्वविद्यालय तक की योजना बनानी चाहिए।"

इसी अवसर पर भारत के राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने सम्मेलन को भेजे अपने सन्देश में कहा था : "अपने ही घर में विदेशी बनाने की अंग्रेजी शिक्षा अब हमेशा के लिए समाप्त हो जाय और ग्राम विश्वविद्यालय शुरू किया जाय।

भारत के शिक्षामन्त्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने कहा था "वह विश्वविद्यालय देश में शिक्षा के भविष्य के लिए एक दीप-स्तम्भ का काम करेगा जिसमें समाज के पूरे जीवन की तालीम का इन्तज़ाम होगा।

(५ मार्च, १९५१; सातवाँ बुनियादी शिक्षा सम्मेलन रिपोर्ट से)

पूरे समाज के शिक्षण के सवाल को लेकर श्री धीरेन्द्र भाई ने कहा था :

"·····भारत कृषि प्रधान देश है, अधिकतर जनता गाँवों में बसी है। देश के ८० प्रतिशत नागरिकों को शिक्षित करना हो तो वे विश्वविद्यालयों तक पहुँच ही नहीं सकते। विश्वविद्यालय को ही नागरिकों के पास तक पहुँचना होगा।"

"····देश के बड़े-बड़े कारखाने जैसे चितरंजन आदि उस बड़े विश्वविद्यालय को एक-एक फेकल्टीज़ (संकाय) होंगी।"

लोकनायक जयप्रकाश ने कहा था :

"....देश में निर्माण और विकास के सारे काम शिक्षण का माध्यम होने चाहिए। बड़े-बड़े बाँध, सड़कें आदि जहाँ बनते हैं वहाँ हजारों श्रमिक नागरिक इन कामों में लगते हैं। श्री धीरेन्द्र भाई के कथनानुसार ये सब स्थान विश्व-विद्यालय के क्षेत्र में आने चाहिए। क्यों नहीं हो सकता ऐसा। मैं चाहूँगा कि योजना आयोग इस पर विचार करे....."

[सन् १९५६ में सोखोदेवरा (गया) में योजना आयोग के विशेषज्ञों के समक्ष हुए एक भाषण का अंश]

नागरिक विश्वविद्यालय के सूत्र समान-शिक्षण का काम करनेवाले अनेक मनीषियों के चिन्तन से प्राप्त हुए हैं। इन्हीं सब सूत्रों को जोड़कर काशी नगरी में नागरिक विश्वविद्यालय अभियान यात्रा का आयोजन किया गया।

आचार्य दादा धर्माधिकारी ने नागरिक विश्वविद्यालय की कल्पना को साकार करते हुए उसका पाठ्यक्रम, वह क्या करेगा ? तथा उसकी रूपरेखा का संदर्भसहित विवेचन किया है।

इस विवेचन तथा पूर्व भूमिका से मिले सूत्रों को जोड़कर एक अभिनव प्रयोग का सूत्रपात काशी नगरी से हुआ है। इसे आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें आशा है कि इससे हम सबको नयी लोकाभिमुख दिशा के संकेत मिलेंगे।

–नरेन्द्र भाई

•

पारस्परिकता की दिशा

जड़ की बात यह है कि आचार्य नागरिकों के बीच क्यों जायँ और किसलिए जायँ ?

माओ ने एक बात कही थी मजे की कि **"सिखाने मत जाओ—सीखने जाओ।"** यही वृत्ति धीरेनदा में थी। वे कहते थे कि सिखाना और सीखना एक ही प्रक्रिया है। सीखने में से भी सिखाना होना चाहिए।

मैं, मैं न रहूँ—तू, तू न रहे

कबीर का उदाहरण सामने है। वह एक ऐसा आदमी था कि जिसकी बात आज भी चलती है। वह पढ़ा-लिखा नहीं था, लेकिन बात उसकी चलती है। उसने परलोक की बात कही। कबीर अगर इहलोक की बात करता तो शायद आज तक उसका नाम न चलता।

परलोक की बातों में 'मैं' और 'तू' का इस्तेमाल है, लेकिन उसमें तू परमात्मा के रूप में रहता है। इसलिए आसानी से कहा जा सकता है कि **मैं, मैं न रहूँ—तू, तू न रहे।**

लेकिन इहलोक में तू पड़ोसी के रूप में रहता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि हमें इहलोक में पड़ोसी के साथ जीना पड़ता है। जीवन परलोक में नहीं, इहलोक में है।

तो सवाल यह उठता है कि इहलोक में जीवन की दिशा कौन-सी हो ?

दिशा पूर्व की, पश्चिम की, उत्तर या दक्षिण की नहीं होगी।

जैसे परलोक में परमात्मा के साथ एकरूप होते हैं वैसे ही इहलोक में भी सुखी जीवन के लिए मैं की दिशा तू की तरफ होगी और तू की दिशा मैं की तरफ।

मेरी दिशा पड़ोसी की तरफ रहे और पड़ोसी की दिशा मेरी तरफ रहे, यही प्रगति है और कोई दूसरी प्रगति की दिशा हो नहीं सकती।

इसीका नाम परस्पर सम्बन्ध है। परन्तु समाज की स्थिति ऐसी नहीं है।

जिस परिस्थिति में हम रहते हैं वह हमें एक-दूसरे से विमुख होने के लिए मजबूर करती है।

इसलिए अब क्या हो गया है कि तुम तुम रह गये और हम हम रह गये।

तुम और हम एक-दूसरे की तरफ नहीं बढ़े। यह वस्तुस्थिति है। इसके निराकरण के लिए ही सब आन्दोलन शुरू होते हैं।

ये आन्दोलन सफल क्यों नहीं होते ?

इसका कारण यह है कि आन्दोलन कहीं न कहीं जाकर ठिठक जाते हैं।

मैं आपकी तरफ बढ़ते-बढ़ते ठिठक जाता हूँ। आप मेरी तरफ बढ़ते-बढ़ते ठिठक जाते हैं।

यह ठिठक अनेक कारणों से होती है। कभी धर्म के नाम पर, कभी विचार के नाम पर।

इस ठिठक का परिणाम होता है आपसी टक्कर।

इस आपसी टक्कर को रोकने का उपाय निकाला गया है—सेक्यूलरिज्म—धर्म-निरपेक्षता।

इस धर्म-निरपेक्षता में मिलन नहीं है।

मिलन तो एक पारमार्थिक आध्यात्मिक मूल्य है।

इस मिलन के लिए कौन किसको सिखायेगा ?

यह तो परस्पर होगा।

आज परस्पर मिलन की आकांक्षा ही नहीं है। इसलिए पहले तो आकांक्षा को ही जागृत करना पड़ेगा। आकांक्षा जगाने के लिए मनुष्य में आत्मबोध आना चाहिए। अब आत्मबोध कहने से कोई बहुत ऊँची चीज हो जाती है ऐसा लगता है, लेकिन मैं जिस स्तर पर जीता हूँ, उसी पर आत्मबोध की बात कह रहा हूँ। आत्मबोध मनुष्य में ही है, दूसरी किसी योनि में नहीं। आत्मबोध का भी जीवन से अलग कोई अस्तित्व नहीं है। जीवन की प्रक्रियाओं के बीच रहकर ही आत्मबोध हो सकता है।

यह आत्मबोध किसी स्कूली शिक्षण में होगा क्या ?

वहाँ नहीं होगा, क्योंकि स्कूल का शिक्षण जीवन की प्रत्येक प्रक्रियाओं से बहुत दूर है।

इसलिए धीरेनदा कहते थे कि स्कूल गाँव में फैल जाय और गाँव स्कूल बन जाय। गांधीजी की नयी तालीम यही है।

सच्चा शिक्षण

इवान इलिच डी-स्कूलिंग की बात कहता है। उसकी एक किताब है, बहुत सुन्दर –द सेलिब्रेशन आफ अवेयरनेस– 'आत्मबोध का उत्सव'।

लिखने-पढ़ने के इन स्कूलों में आत्मबोध नहीं होता।

एक कहानी याद आती है। नदी में नाव जा रही थी। नाव का मल्लाह बे-पढ़ा-लिखा था।

एक पढ़े-लिखे पंडित ने उससे कहा : "तुम बे-पढ़े-लिखे रह गये। तुम्हारा जीवन अकारथ गया।"

नाविक चुपचाप नाव चलाता रहा। जब नाव डूबने लगी तो पढ़े-लिखे पंडित चिल्लाने लगे। उनका चिल्लाना सुनकर नाविक ने कहा : "आपका पढ़ना-लिखना अकारथ गया। आप तैरना भी नहीं जानते ! आपने जान बचाने की भी विद्या नहीं सीखी, तो किस काम का आपका सारा शिक्षण ?"

कहने का मतलब यह है कि केवल अक्षर-ज्ञान ही शिक्षण नहीं है।

लेकिन कर्ममात्र भी आत्मबोध पैदा नहीं कर सकता। उसके लिए आकांक्षा पैदा करनी होगी। वर्तमान में ही सन्तोष करने से प्रगति नहीं होगी। कर्म के साथ विचार को, ज्ञान को भी जोड़ना होगा। ज्ञान का सम्बन्ध शब्द-शक्ति से है। मैं बहुत नम्रतापूर्वक कहता हूँ कि मेरा शब्द की शक्ति में बहुत विश्वास है। शब्द अमोघ हैं। जितनी बातें कही जाती हैं, शब्द से ही कही जाती हैं। कर्म से शब्द अगर सीमित हो जाय तो शब्द शक्तिहीन हो जायगा। इसलिए यह जरूरी नहीं है कि जितना आप करें उतना ही सोचें। सोच, चिन्तन तो कर्मका मार्ग-दर्शक है। लेकिन सोच की दिशा के अनुरूप ही कर्म होना चाहिए। अगर कोई महापुरुष कर्म की सीमा में चिन्तन को बाँधेगा तो उसकी महत्ता का अंत है। उसके जैसा दूसरा पतित है ही नहीं। जो चीज हमारी पकड़ में है उससे हम जो पहुँच में हैं उसकी ओर बढ़ें, यही शिक्षण है।

अब सवाल उठता है कि जिस नागरिक की दिशा में अभिमुख होना है और जिसको बोध कराना है वह है कहाँ ? वह तो यहाँ आया नहीं है। वह नागरिक तो कहीं सोया है। और समाज में भगवान्‌रूपी इन्सानियत कहीं खो गयी है। अतः मित्रो, आज आचार्यों के जिम्मे दो काम हैं :

१. सोये हुए नागरिक को जगाना, और

२. खोयी हुई इन्सानियत को तलाश करना।

कर्म जितना है उतना ही अगर मनुष्य का शिक्षण रहेगा तो मनुष्य आगे कभी नहीं बढ़ सकेगा। इसलिए आचार्य नागरिकों के बीच जाकर उनके जीवन से कर्म की प्रेरणा लें और उनको अपने चिन्तन से समृद्ध करें। ऐसा होने पर पारस्परिक शिक्षण की प्रक्रिया शुरू हो सकेगी तथा मैं और तू पारस्परिकता की दिशा में कदम उठा सकेंगे। पारस्परिकता का दिशाबोध सोये नागरिक को जगायेगा और खोयी इंसानियत को तलाश करने का रास्ता बतायेगा।

हिम्मतवाले लोग

काशी का वैभव

सोये नागरिक को जगाने और खोयी इंसानियत को तलाश करने का यह काम काशी से शुरू हो रहा है। इसमें एक विशेषता है। विश्व में दो ही विश्व नगर कहे गये हैं। इनको इंटरनल सिटी—अमरपुरी कहा गया। एक तो इटली में रोम और दूसरा, भारत में काशी। काशी को देवनगर माना गया। देवनगर क्यों कहा गया? यह शहर किसी मनुष्य का नहीं, किसी व्यक्ति का नहीं और मनुष्यों के समुदाय का भी नहीं, इसीलिए इसे देवनगर कहा गया। काशी-नरेश गंगा के उस पार रामनगर में रहते हैं। कहा जाता है कि रामनगर में मरनेवाले को मोक्ष नहीं मिलता। काशी में मरनेवाले को ही मिलता है ऐसी मान्यता है। यह विश्व-नगर है। यहाँ किसीका राज्य नहीं। इस देवनगर में विश्वनाथ का ही अनुशासन चलता है और उनका सिपाही उनका थानेदार है कालभैरव। यह संकेत है बहुत बड़ा। रोम में भी पोप का वैटिकन शहर अलग है। संकेत यह है कि यहाँ क्षेत्रीय, भाषिक, साम्प्रदायिक और सांस्कृतिक कोई भेद नहीं माना जायगा। यहाँ जो रहेगा वह मनुष्य ही होगा, खालिस मनुष्य, किसी लेबुल के बिना, किसी विशेषण के बिना। नागरिक भी नहीं, मनुष्य ही होगा।

दूसरा संकेत है हरिश्चन्द्र की आख्यायिका में। उसने अपना सारा राज्य सौंप दिया विश्वामित्र के हाथ। फिर विश्वामित्र ने कहा: "दान की सम्पूर्णता तब होगी, जब इस पर कुछ दक्षिणा दो।"

हरिश्चन्द्र दक्षिणा देने के लिए अपने अलंकार उतारने लगा।

"क्या कर रहा है? तूने तो सारा राज मुझे सौंप दिया है। ये अलंकार अब तेरे नहीं रहे। इनको उतारकर मुझे दे दे। तारामती के, रोहिताश्व के ये सारे

अलंकार मेरे हैं। क्योंकि सार्वभौम राज्य तूने मुझे दे दिया है।" विश्वामित्र ने कहा।

हरिश्चन्द्र कुछ विचार में पड़ गया कि अब क्या करूँ?

विश्वामित्र ने कहा : "तू मुझे एक अजीब-सा आदमी मालूम होता है। अरे, भगवान् का दिया हुआ साढ़े तीन हाथ का शरीर ही तेरा सबसे बड़ा वैभव है, सबसे बड़ी सम्पत्ति है, इसे क्यों भूल रहा है और इस तरह मेरे सामने विवशता की, लाचारी की बात कर रहा है?"

"क्या करूँ?"

"बेच इसे, इस शरीर को।"

"कहाँ बेचूँ?"

"तू मेरे राज्य में तो नहीं बेच सकेगा। लेकिन जहाँ किसीका राज नहीं है उस काशी नगर में जा और वहाँ के बाजार में खड़ा हो जा।"

तो हरिश्चन्द्र खड़ा हुआ यहाँ आकर।

इस प्रकार से यह काशी क्षेत्र पूर्वकाल से ही मुक्ति-क्षेत्र है। यही इसका वैभव है। इंसानियत की तलाश का काम यहाँ से शुरू हो सकता है, क्योंकि यहाँ नागरिक की स्वतंत्र हस्ती होती है, ऐसा माना गया है।

धर्म की बेड़ियाँ

इस देवनगर की भाषा भी देवभाषा है, जो किसी भी क्षेत्र की नहीं। ऐसी भाषा, जो न मेरी है और न तेरी है। दोनों की है और दोनों की ही नहीं, सबकी है। यह व्यापक है। संख्या कितनी होगी संस्कृत जाननेवालों की, बहुत थोड़ी संख्या होगी। लेकिन इसकी भूमिका व्यापक है। मान लीजिये, बंगाली बोलनेवालों की संख्या बहुत ज्यादा है, हिन्दी बोलनेवालों की उससे ज्यादा है। लेकिन ये दोनों व्यापक नहीं हैं। बंगाली सब नहीं समझते। भिन्न भाषियों का आपस में एक-दूसरे के साथ सम्पर्क जिस भाषा के द्वारा हो सकता है उसको जाननेवाले चाहे मुट्ठीभर ही हों, उसकी भूमिका व्यापक होती है। संस्कृत पंडितों की ही भाषा थी। लेकिन कन्याकुमारी और कश्मीर दोनों स्थानों के पंडितों की भाषा थी। इसलिए वह देवभाषा कहलायी और जो किसीकी लिपि नहीं थी, वह देवनागरी कहलायी। संस्कृत इसी लिपि में लिखी जाती है।

मित्रो, आज देश में बिखराव जो हो रहा है, उसमें लिपि भी एक चीज है। बिखराव का एक कारण लिपि भी है। इस्लाम के अनुयायी और नानक के अनुयायी अपनी भाषा के साथ लिपि को भी जोड़ते हैं। इस प्रकार से भाषा और लिपि को सम्प्रदाय से जोड़ दिया है। यह गलत बात है। अब यह कौन कहे? लिपि और भाषा तो जोड़ने का साधन है। लेकिन उसे सम्प्रदाय के साथ जोड़कर तोड़ने का साधन बना दिया। इस तरह इस देश में जितने जोड़ने के साधन थे, उन्हें तोड़ने का माध्यम बना दिया।

हिम्मतवाले लोग

जो मनुष्यों को जोड़ने की कड़ियाँ थीं वे बेड़ियाँ बन गयीं और वे भी संस्कृति के नाम पर बन गयीं और हम सब विद्वान् उनके हिमायती हैं। उन बेड़ियों के पक्षपाती हैं। क्यों हैं? वे तो सोने की हैं, क्योंकि हमारे सम्प्रदाय की हैं। हमें प्यारी हो गयी हैं। कुछ लोग ऐसे चाहिए, जो हर सम्प्रदायवालों से कह सकें कि धर्म की ये बेड़ियाँ हैं, इन बेड़ियों में धर्म ही कैद हो जायगा, बन्दी बन जायगा। ऐसा कहनेवाले हिम्मतवाले लोग चाहिए।

एक सुब्रह्मण्यम अय्यर थे। वे चीफ जस्टिस थे मद्रास हाईकोर्ट के। एनी बेसेन्ट के साथी थे। संन्यासी हो गये। अंग्रेज सरकार से उनको पेन्शन मिलती थी। वे गांधी के आन्दोलन का समर्थन करने लगे। तो मान्टेग्यू ने, जो उस वक्त इंग्लैंड में भारत-मंत्री थे, धमकी दी कि "आप गांधी का साथ देंगे तो याद रखिये आपकी पेन्शन हम लोग बन्द कर देंगे, आपको भारत से निकाल देंगे।" तो वे कहने लगे: "पेन्शन बन्द करना हो तो अवश्य बन्द करो। मैं तो संन्यासी हो गया हूँ, किसी शासक को नहीं मानता। संन्यासी का एक ही शासक है। वह है ईश्वर। तू तो उससे बड़ा है नहीं। तू बात कहता है एक्सटर्न कर दूँगा। भारत से निकाल दूँगा। मुझे मद्रास से निकाल दोगे, सारा विश्व मेरा घर है। मुझे तू कहाँ भेज सकता है? लेकिन एक बात तू समझ ले कि किसी देश की कोई पार्लमेन्ट मेरी पेन्शन बन्द नहीं कर सकती। मैं भी कानून जानता हूँ।" इसको कहते हैं हिम्मत।

आज जिस प्रकार के व्यक्तियों की जरूरत है वे केवल सरकार के सम्बन्ध में ही हिम्मत नहीं दिखायेंगे, लोगों को भी हिम्मत से कह सकें उनके दोष। राज्य से भी न डरें और लोगों को भी नाहक खुश करने का प्रयत्न न करें। जो दोनों को खरी-खरी सुना सकें, ऐसे आदमियों की आवश्यकता है।

लोगों के दरबार में भी जो सत्य कह सके और राजा के दरबार में भी सत्य कह सके वह तटस्थ है, निष्पक्ष। निष्पक्ष का मतलब यह नहीं है कि न मुरारजी की तरफ रहे, और न इंदिराजी की तरफ। यह तो निष्पक्षता की बहुत निम्न स्तर की व्याख्या है। असली व्याख्या तो यह है कि न तो वह बिरला का कायल है और न उन मजदूरों का कायल है, जिनकी नेतागिरी करता है। जो दोनों को कह सकता है वही निष्पक्ष है, वही निर्भय है और वही निर्वैर है।

रामशास्त्री था महाराष्ट्र में। पेशवाओं के जमाने में राघोबा था पेशवा। उसने अपने भतीजे की हत्या करा दी, खून कराया। रामशास्त्री न्यायाधीश थे। बुलाये गये।

उनसे पूछा गया कि "आपकी क्या राय है? इस अपराध का प्रायश्चित्त करना चाहते हैं तो आपका क्या कहना है?"

उन्होंने कहा : "मैं न्यायाधीश हूँ। जिसने हत्या की हो उसको मौत की सजा दी जायगी। इसके अलावा दूसरा कुछ नहीं हो सकता।"

पेशवा की स्त्री कहने लगी : "पता नहीं है किसके सामने बोल रहे हो? हम तुम्हारी जीभ काट सकते हैं।"

वह बोला : "रानी साहब, जिस जीभ को झूठ बोलने का मोह हो उससे पहले ही उसको काट देना चाहिए तो अच्छा होगा। लेकिन जिस चीज की मैं आपसे तनख्वाह पाता हूँ वह यह है कि जो हत्यारा हो उसको प्राण-दंड ही मिलना चाहिए।"

थोड़े ही आदमी हुए होंगे, लेकिन ऐसे आदमी हुए हैं। ऐसे आदमियों की आज जरूरत है। क्योंकि अन्तिम सत्ता जिस नागरिक की है वह मोहताज है। यह अद्‌भुत स्थिति है कि जो देश का राजा है वही भिखारी है। भिखारी राजा तो हो गया, लेकिन पेट उसका खाली है और अधिकार उसको है नहीं। यह होश दिलाना है, उसमें यह चेतना पैदा करनी है कि तू है देश का राजा और अगर तू भिखारी है तो दोष तेरा है। उनका नहीं है, जो तुझे धोखा देकर, फुसलाकर तेरे अधिकार छीन लेते हैं। वे दोषी नहीं हैं, दोषी तू है। तेरे हाथ में सारा शासन है, तू भिखारी हो गया है। तू मोहताज हो गया है और सबके दरवाजे पर जाता है भीख माँगने।

आदमी खो गया है

एक साहूकार थे बहुत बड़े, एक भिखारी पहुँचा दरवाजे पर। वे बैठे हुए थे। भिखारी ने कहा, भगवान् आपका भला करे, कुछ दे दो। सेठ बैठे रहे और कहा,

यहाँ कोई आदमी नहीं है अभी जाओ। भिखारी ने दोबारा कहा, तिबारा कहा, सेठ झल्ला गया। कहने लगा कि कह दिया अभी जाओ, यहाँ कोई आदमी नहीं है। भिखारी बोला, हुजूर, मैंने तो यह समझा था कि मेरे सामने जो बैठा है वह कोई आदमी ही बैठा है। मुझे पता नहीं था।

मित्रो! वास्तव में आदमी खो गया है। यह उसी तरह खो गया है, जैसे हनुमान् अपनी शक्ति को भूल गया था। एक भिखारी है, दूसरा सेठ है। दोनों भूल गये हैं कि वे बुनियाद में आदमी हैं। नागरिक विश्वविद्यालय का काम यह स्मरण दिलाना होगा कि तुम दोनों आदमी हो। लेकिन एक भीख की झोली में खो गया है और एक धन की थैली में खो गया है। भिखारी को भीख माँगने की झोली फेंकनी होगी और सेठ को धन की थैली फेंकनी होगी। दोनों को यह कहने की हिम्मत जो दिला सके, इस वक्त ऐसे निष्पक्ष, निर्भय, निर्वैर आदमी की जरूरत है समाज को।

ऐसे लोगों को ही हिम्मतवाला कहा जायगा। •

सर्वधर्म-समभाव

पूरब-पच्छिम का भेद

जहाँ इतने अधिक धर्मों के लोग साथ-साथ रह रहे हैं ऐसा कोई दूसरा देश नहीं है। मैंने कहा था कि भारत देश की भूमि की यह विशेषता है। यहाँ की भूमि में जीवन समन्वय का साधक रहा है। समन्वय अभी सिद्ध नहीं हुआ है, लेकिन समन्वय की साधना यहाँ रही है। यों तो सारे धर्मों का जन्म पूर्व में ही हुआ है। पश्चिम में किसी धर्म का जन्म नहीं हुआ। पूर्व और पश्चिम कहना सही नहीं है। लेकिन विद्वान् भी पूर्व और पश्चिम की ही भाषा बोलते हैं। मुझे भी जब बोलना होता है तो उसी रूढ़ भाषा में बोलता हूँ।

एक किस्सा याद आता है। जब मैं पढ़ाता था तो कई बार ऐसा होता था कि दूसरे वर्ग के लड़के भी मेरी कक्षा में आकर बैठ जाते थे। एक दफा मैं अंग्रेजी की एक कविता पढ़ा रहा था। उसके दो चरण हैं। उसमें लिखा था—पूर्व पूर्व है, पश्चिम पश्चिम है। इनका मेल कभी नहीं होगा।

मेरी क्लास के लड़के चुपचाप सुन रहे थे। कहीं से एक छोटा लड़का आ गया था। उसने कहा, यह कविता जिसने लिखी है वह कौन था? मैंने कहा, इंग्लैंड का

बहुत बड़ा कवि था। इसको नोबल प्राइज मिला था। लड़का बोला, वह कुछ भी था, लेकिन उसको भूगोल का ज्ञान भी था क्या ?

मैंने कहा, तुम कैसा सवाल पूछ रहे हो। इतना विद्वान् आदमी क्या भूगोल नहीं जानता होगा ?

लड़का बोला, मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।

मैंने कहा, क्यों ?

उसे मालूम नहीं था कि पृथ्वी गोल है। इसमें पूर्व-पश्चिम कुछ है ही नहीं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ये सब अल्पाधिक संज्ञाएँ हैं। तो पृथ्वी गोल है। इसमें स्थायी रूप से पूरब-पश्चिम कैसे हो सकता है ? हमने अपनी सहूलियत के लिए दिशाओं के नाम रख लिये हैं। वास्तव में कोई पूरब और पश्चिम नहीं है। कोई सीमाएँ नहीं हैं। कोई बाड़े नहीं हैं। यह सब मैं इसलिए कह रहा हूँ कि बहुत-से उदात्त विचार मेरे जमाने में अंग्रेजी से मिले हैं। इनको पश्चिम से आये विचार कहा जाता है। ये विचार ईसाई मिशनरियों से नहीं मिले। ईसाइयों से मिले।

धर्म-प्रचारक और धार्मिक

ईसाई मिशनरी और ईसाई में फर्क मैंने जान-बूझकर किया है। क्योंकि धर्म-प्रचारक और धार्मिक दोनों अलग-अलग होते हैं। धर्म-प्रचारक धर्म का उपदेश करता है। साधारण मनुष्य धर्म का आचरण करता है वह धार्मिक होता है। ये पादरी, पुरोहित, मुल्ला धर्म और इन्सान के बीच के बिचौलिये हैं। शायद इस्लाम के धर्म-ग्रंथों में बिचौलिये नहीं हैं। फिर भी बिचौलिये आ गये हैं। दूसरे धर्मों में भी हैं। बिचौलिये सभी क्षेत्र में हैं। धर्म के क्षेत्र में हैं, राजनीति के क्षेत्र में हैं, बाजार में तो हैं ही। अब तो सेवा के क्षेत्र में भी बिचौलिये आ गये हैं। अब इनका क्या फंक्शन है ? क्यों ये बीच में आते हैं ?

बाजार में जो बिचौलिये हैं इनको तो दलाल कहते हैं। इनका एक ही काम है कि उपभोक्ता और उत्पादक को एक-दूसरे के पास नहीं आने देना। प्रोड्यूसर और कन्ज्यूमर को एक-दूसरे के नजदीक नहीं आने देना। इसका माल उसके पास पहुँचाना ही इनका काम होता है।

राजनीति में पोलिटिशियन। उसका एक ही काम है—एक नागरिक दूसरे नागरिक के नजदीक न जा सके।

धर्म में जो बिचौलिया है उसका काम है कि भगवान् और भक्त एक-दूसरे के नजदीक न आ सकें। तो, एक का नाम है क्रिश्चियानिटी और दूसरे का नाम है

चर्चियानिटी। कहावत है--मनुष्य चर्च के जितने नजदीक होगा, ईश्वर से उतनी ही दूर होता है।

मन्दिर, मस्जिद, गिरजावाद

यह चर्चियानिटी और क्रिश्चियानिटी में अन्तर है। धर्म अलग चीज है और धर्मान्धता अलग चीज है। इसलिए मैं अब इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि धार्मिक समुदाय नहीं होने चाहिए। क्योंकि धर्मों में उतनी भिन्नता नहीं है, जितनी समुदायों में भिन्नता है। एक आदमी ईसाई है। सच बोलता है, झूठ बोलता है। दूसरा हिन्दू है। सच बोलता है, झूठ बोलता है। दोनों का नीति, दर्शन और धर्म यह कहता है कि सच बोलना चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए। फिर क्या चीज है, जो इनको अलग करती है। दोनों ईश्वर-भक्त हैं। नैतिकता दोनों को चाहिए। ईश्वर-भक्ति दोनों को चाहिए। सभ्यता भी दोनों को चाहिए। तो, अलग करनेवाली चीज कौन-सी है। ये कामन फैक्टर निकाल लेते हैं, फिर जो कुछ बच जाता है उसका नाम धार्मिक समाज है। इन धर्मों में से आप ईश्वर को, नीतिमत्ता को, सदाचार को और बंधुत्व को, प्रेम को हटा दीजिये तो जो बच जाता है उसीका नाम धार्मिक समुदाय (चर्चियानिटी) है। इसलिए चर्च अलग चीज है, चर्चियानिटी अलग चीज है। मन्दिरवाद, मस्जिदवाद और गिरजावाद ने मनुष्यों को अलग कर दिया, क्योंकि ईश्वर भी इन स्थानों में बँध गये। मन्दिरवाद, मस्जिदवाद आदि से धर्म को बचाने के लिए पहला कदम सर्वधर्म-समन्वय है। सर्वधर्म-समानत्व उसका अगला कदम होगा। इसके बाद बहुवचन में धर्म होगा ही नहीं। उपासना होगी। उपासना ईसा की होगी, अल्लाह की होगी, पिता की होगी। जो नाम जिसे प्यारा हो, उसकी होगी।

भारत देश में सांस्कृतिक संस्पर्श शुरू हुआ। जो लोग यहाँ आये वे यहीं समाते चले गये। उनका कोई अलगाव नहीं रहा। रवि ठाकुर ने कहा कि 'केतोव धारा' कितनी धारा आयीं और ये निर्बाध रूप से अबाधित रूप से आयीं। कहाँ से आयीं पता नहीं? 'समुद्र होलो हारा' इस महामानव-सागर में वे सब खो गयीं। वे तो खो गयीं, लेकिन दो धाराएँ ऐसी आयीं, जो यहाँ खो नहीं सकीं। क्यों नहीं खो सकीं, इसका अध्ययन करना चाहिए।

पहली धारा आयी मुसलमानों की। राज वगैरह छोड़ दीजिये, राज भी आया। मुसलमान आये, जिनका संस्पर्श अधिक हुआ इस देश के कोने-कोने में। उनके सामने यहाँ का उस वक्त का जो समाज रहा वह ठहर नहीं सका। उस समाज को हिन्दू कहिये या और कुछ कहिये। क्योंकि मुझे अब तक इस बात

का पता नहीं चला है कि चारों वर्णों के लिए हिन्दू शब्द से पहले इस देश में एक शब्द रहा हो। यहाँ के एक बड़े शास्त्री थे। अब हैं कि नहीं पता नहीं—अनंत-कृष्ण शास्त्री। एक पुस्तक उन्होंने लिखी—सनातनधर्म प्रदीप, तो उसका अध्ययन मैं करने लगा। उसमें उन्होंने कहा कि इस देश में चारों वर्णों के लिए कभी एक शब्द था ही नहीं। हिन्दू शब्द बाद में आया। तो जो कोई रहे होंगे उस वक्त उनमें बाहर से आनेवाले लोग समा गये और उनके नाम भी बदल गये। यहाँ की भाषा को उन्होंने अपना लिया। लेकिन इस्लाम का समाज ऐसा समाज आया, जो एक समुदाय लेकर यहाँ आया। धर्मों का सन्देश लेकर नहीं आया। समुदाय लेकर आया। हिन्दुओं का समुदाय तो था नहीं, क्योंकि यहाँ जातियाँ थीं। जहाँ जाति हो, वहाँ समाज नहीं होता। जाति ही एक समुदाय होती है। तो हिन्दुओं का समुदाय कभी बन नहीं सका। मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि हम सब अपनी तरफ देखें। आज भी इस देश में हिन्दुओं की संख्या अधिक है, लेकिन प्रभावी नहीं है। तो इस्लाम एक समुदाय लेकर आया, हमारा तो समुदाय था नहीं। तो हमारा क्या था? एक फेडरेशन था। छोटे समाजों का, जातियों का एक संघ था और इसका लक्षण यह था कि वह फेडरेशन—संघ परस्पराभिमुख नहीं था। ये जातियाँ परस्पर अभिमुख नहीं थीं, क्योंकि जातियों का लक्षण ही यह है कि जो दूसरों के साथ बैठेगा नहीं, खायेगा नहीं, पीयेगा नहीं, और शादी नहीं करेगा—वह पवित्र है। दूसरी जाति के मनुष्य से परहेज ही जहाँ पवित्रता की कसौटी है, वहाँ सामाजिकता पनप नहीं सकती। तो मुसलमानों से पहले सामाजिकता पनप नहीं सकी और जिनके लिए जाति में रहना बहुत कठिन था, दुश्वार था, वे इस समाज को छोड़कर चले गये। मैं इसलिए कह रहा हूँ कि जिसे हम धर्म-परिवर्तन कहते हैं वह धर्म-परिवर्तन नहीं है, समुदाय-परिवर्तन है। एक समुदाय से दूसरे समुदाय में जाना है।

श्री रामकृष्ण परमहंस ने सारे धर्मों का अनुष्ठान किया था प्रत्यक्ष और यह कहा था कि सारे धर्मों से एक ही सिद्धि मिलती है।

गांधी आया। उसने उसे समाज में चरितार्थ करना चाहा। केवल व्यक्तिगत निष्ठा के रूप में नहीं, बल्कि एक सामाजिक मूल्य के रूप में सर्वधर्म-समन्वय को प्रतिष्ठित करना चाहा।

विनोबा ने सारे धर्म-ग्रंथों का अध्ययन किया। उसका सार निकाला। मैं जानता हूँ, जब वे कुरान पढ़ते थे तो उतनी ही तन्मयता से पढ़ते थे, जितनी तन्मयता से भगवद्गीता पढ़ते थे। बाइबिल भी उतनी ही तन्मयता से पढ़ते थे। लेकिन मुसलमान उन्हें मुसलमान नहीं मानेंगे, ईसाई उन्हें ईसाई नहीं मानेंगे,

सिख उन्हें सिख नहीं मानेंगे। क्योंकि उनके हाथ में कड़ा वगैरह नहीं है। खतना नहीं हुआ है और बपतिस्मा नहीं लिया है। जब तक धर्मों को इन कर्मकांडों में बाँधकर रखा जायगा तब तक धर्म एक-दूसरे के नजदीक नहीं आ सकते। क्योंकि धर्मों के उपदेशक उनको अलग-अलग रखना चाहते हैं।

सत्य का एक टुकड़ा

शंकरराव की दिल्ली-पेकिंग-यात्रा चल रही थी। बाहर से भी लोग आये थे इस यात्रा में शामिल होने। एक मिशनरी आया था इंग्लैंड से माइकिल स्काट। उसने कहानी सुनाई—एक दिन शैतान अपने दो शिष्यों के साथ घूमने निकला। छोटा शिष्य आगे-आगे चल रहा था। चलते-चलते ठिठक गया। कोई चमकीली चीज दिखाई दी। उसको उठाया और अपनी जेब में रख लिया। बड़ा शिष्य देख रहा था। उसने गुरुजी से कहा : "इसने कुछ उठा लिया है और आपको नहीं बतला रहा है।"

गुरु ने उसको पुकारा, बुलाया। पूछा : "क्या मिल गया है तुझे ?"

उसने कहा : "सत्य का एक टुकड़ा नीचे पड़ा हुआ था, चमक रहा था, मुझे मोह हो गया। मैंने उठाकर उसे अपनी जेब में रख लिया।"

तब शैतान ने कहा : "कोई फिक्र की बात नहीं है। सत्य का एक टुकड़ा तुम्हारी शैतानियत को समाप्त नहीं कर सकता। सत्य के इस टुकड़े की पहली बात और अन्तिम बात लेकर यदि संगठन करोगे तो सत्य के और भी टुकड़े हो जायेंगे।"

मित्रो ! टुकड़ों में जो सत्य होता है वह सीमित होता है। सीमित सत्य वास्तव में सत्य नहीं रह जाता। **सत्य के एक टुकड़े के चारों तरफ दीवारें खड़ी हो जाती हैं तो धर्म बनता है।** इसी तरह से सर्व धर्म बने हैं। हरएक के पास सत्य का एक-एक टुकड़ा है। हर धर्म का अपने-अपने टुकड़े का आग्रह है। यह आग्रह उनको आपस में लड़ाता है। इसीलिए गांधीजी ने पूरे सत्य के दर्शन करने के लिए सर्वधर्म-समन्वय और सर्वधर्म-समवाय को एक सामाजिक मूल्य बनाने की कोशिश की।

मैंने पहले कहा है कि इस्लाम धर्म भारत में समुदाय (कम्युनिटी) लेकर आया सत्य का एक टुकड़ा। इसी प्रकार अंग्रेजी राज्य के साथ जो ईसाई आये वे आधुनिकता लेकर आये। मैं जान-बूझकर अंग्रेजी राज के साथ ईसाइयों का नाम ले रहा हूँ, क्योंकि जो ईसाई बहुत पहले आये वे आधुनिकता लेकर नहीं आये। इस्लाम तो समानता लेकर आया। उसमें काले-गोरे का भी फर्क नहीं है।

धर्मों में सत्य के एक पहलू पर जोर देने की बात एक उदाहरण से ठीक-ठीक सिद्ध होती है। अम्बेडकर के सामने यह सवाल आया कि मैं जाति में तो नहीं रह सकता हूं और जाति छोड़नी हो तो उस जाति से सम्बद्ध समाज भी छोड़ना होगा। नहीं तो जाति भी नहीं छोड़ सकता हूँ। यह जाति का एक बड़ा लक्षण है। इसमें प्रवेश का कोई दरवाजा नहीं है, बाहर जाने का ही है। परिणाम यह हुआ कि भारत में जिसे हिन्दू-धर्म कहते हैं उसमें से ही निर्यात होकर यहाँ अनेक सम्प्रदाय पनपे हैं। चाहे सिख हों, चाहे जैन हों, चाहे ईसाई हों, चाहे मुसल्मान हों, इन सारे-के-सारे सम्प्रदायों में जो लोग हैं वे हिन्दू-समाज से ही निर्यात हुए हैं। यह निर्यात क्यों हुआ ? क्योंकि हिन्दू-समाज में अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी, जिनको जाति-व्यवस्था की दृष्टि से नीच और हीन माना जाता रहा। अतः जो जाति में इज्जत के साथ नहीं रह सकते थे, वे हिन्दू-समाज से निर्यात होकर दूसरे धर्मों में चले गये। इसी प्रकार अम्बेडकर को सोचना पड़ा। अम्बेडकर ने सोचा कि मुसलमान बनूँगा तो एक्स्ट्राटेरिटोरियल हो जाऊँगा, क्योंकि मुसलमानों का ध्यान रहता है अरब में। अर्थात् अधिकांश मुसल्मान ऐसे थे, जिनकी आस्था का स्थान भारत से बाहर है।

तो कहा, क्या बनूँ ?

ईसाई बनूँगा तो काले-गोरे का फर्क रहेगा ही। इस्लाम में काले-गोरे का फर्क नहीं है, लेकिन क्रिश्चियानिटी में काले-गोरे का फर्क है।

बहुत सोचकर अम्बेडकर ने निर्णय किया कि सिख बनूँगा। इसी देश का धर्म है और उसमें जात-पाँत नहीं है।

संविधान परिषद् में प्रस्ताव आया कि अछूतों को कुछ विशेष अधिकार देने चाहिए तो गुरुमुख निहालसिंह मुसाफिर सिख वहाँ थे। वे खड़े हो गये। कहा, सिखों में जो अछूत हैं उनको भी विशेष अधिकार मिलने चाहिए। तो चकित हो गये अम्बेडकर। सोचने लगे कि सिखों में भी अछूत हैं ! हम तो सिखों में जा रहे थे—अम्बेडकर ने कहा। लेकिन इस घटना ने उनकी आँखें खोल दीं। आखिर में तब वे बौद्ध बने। लेकिन उनको भी कहा गया नव-बौद्ध। जैसे नयी दिल्ली। यह मैं इसलिए बतला रहा हूँ कि साम्प्रदायिकता और धार्मिकता में जो अन्तर पड़ गया है उसे हम पहचानें। यह इसलिए होता है कि हमने सत्य के एक चमकीले टुकड़े को अपनी जेब में रखने की हिमाकत की है।

हिन्दू-धर्म में से यह निर्यात जब तक होता रहेगा तब तक इस देश में सम्प्रदाय पनपेंगे और उनमें तथा हिन्दुओं में एक तरह का मनमुटाव रहेगा ही, क्योंकि इनमें से जाते रहेंगे और उनकी संख्या बढ़ती रहेगी। हिन्दू नामधारी जमात

तो अप्रभावी है। किसी काम की नहीं। इसकी जाति-प्रथा ने इसको कमजोर बनाया है। इसीलिए ये सबके सब बँट जाते हैं।

ईसाइयत और आधुनिकता

हाँ, तो मैं कह रहा था कि ईसाई भारत में आधुनिकता (माडर्निटी) लेकर आये, जो यहाँ नहीं थी। क्या है वह माडर्निटी ? तीन चोजें हैं :

कानून के सामने सब समान हैं। यह हमारे देश में कभी था नहीं। इस्लाम के सामने गैर-मुस्लिम कभी समान नहीं थे, लेकिन यह माडर्निटी लेकर आया कि कानून सबके लिए एक ही होगा।

दूसरी चीज लेकर आया कि हर लड़के और हर लड़की के लिए समान शिक्षण हो।

तीसरी चीज लेकर आया कि हर मनुष्य के लिए एक वोट हो।

ये अजीबोगरीब चीजें थीं, जो हमने कभी सुनी नहीं थीं। लेकिन इसने पकड़ा लोगों के दिल को। राजा राममोहन राय जैसे लोगों ने माडर्निटी मूवमेन्ट्स चलाया इस देश में। आधुनिक धर्मों, पंथों के साथ प्राचीनता का पुनर्जीवन (Renaissance) शुरू हुआ। राजा राममोहन राय का ब्राह्म समाज इस पुनर्जागरण के काम में आगे बढ़ा। ब्राह्म समाज में केशवचन्द्र सेन ऐसे व्यक्ति पैदा हुए, जिन्होंने कहा कि क्राइस्ट के सिवा अब उद्धार नहीं होगा। ब्राह्मसमाज में केशवचन्द्र सेन बड़े प्रभावशाली थे। वे सारे भारत को ईसाई बनाने के पक्षपाती थे। राजा राममोहन राय के अन्य साथियों ने कहा कि यह संभव भी नहीं है और वांछनीय भी नहीं है। सन् १८३२ में राममोहन राय इंग्लैंड गये और रानी विक्टोरिया से उन्होंने निवेदन किया कि अंग्रेजी के द्वारा सबके लिए समान शिक्षण की व्यवस्था हमारे देश में की जाय। वे मानते थे कि अंग्रेजी शिक्षण से भारतवर्ष में भारतीय नागरिक पैदा होगा। अखिल भारतीय नागरिक शब्द अंग्रेजों से पहले था ही नहीं। यह शब्द भी अंग्रेजों के साथ आया। यह शब्द लौकिक है, सेक्युलर है। इस दृष्टिकोण का परिणाम यह होना चाहिए था कि भिन्न धर्मों के लोग भी इस देश के नागरिक होंगे।

पड़ोसी को प्यार करो

बाइबिल में ईसा ने एक जगह कहा है : सीजर की चीजें सीजर को दो और ईश्वर की ईश्वर को दो। जो ईश्वर का है वह ईश्वर को दो और जो राजा का है वह राजा को दो। राजा से मतलब समाज। जो राजा का होगा वह सबके

लिए समान होगा। ईश्वर का भी समान होगा। इस प्रकार से समाज लौकिक और ईश्वर पारलौकिक दोनों का मिलन होगा। यह सब धर्मों के लिए चल सकता है। इससे सर्व धर्म एक-दूसरे के नजदीक आयेंगे। लेकिन उपासनाओं में भेद रह सकता है। इस भेद के कारण अलगाव नहीं आना चाहिए।

बाइबिल में एक दूसरी बात भी बहुत महत्त्व की है। अपने पड़ोसी को उतना ही प्यार करो, जितना अपने को करते हो। यह क्यों कहा गया? क्या कहने की आवश्यकता थी? दुश्मन को भी प्यार करो कहने में तो ठीक बात है, लेकिन पड़ोसी को भी प्यार करो, हमारे देश में इसका अभाव रहा है। हम एक-दूसरे के पड़ोस में रहते रहे हैं। लेकिन एक-दूसरे के साथ कभी नहीं रहे। एक-दूसरे के साथ न रहने का परिणाम यह हुआ कि यहाँ छुआछूत को ही पवित्रता माना गया। यह पवित्रता ही जाति का लक्षण है। इसमें से सामाजिकता पैदा नहीं हो सकती, जातीयता पैदा होगी। हमारे देश के सारे चुनावों में जाति का भूत दिखाई दे रहा है। सब जगह सिर उठाता है। तो इसलिए कहा कि पड़ोसी को प्यार करो।

अब प्रश्न उठता है कि पड़ोसी कौन? दुश्मन और दोस्त तो हम बनाते हैं, लेकिन हमारा पड़ोसी कौन होगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। वह तो नियति से बन जाता है। अतः हमारा पड़ोसी कोई भी हो सकता है, इसलिए सब कोई एक-दूसरे के पड़ोसी हैं। (ही इज दि स्पैसीमैन गिविन टू अस) वह मनुष्यता के नमूने के रूप में हमें दिया गया है। इसलिए पड़ोसी को प्यार करना जितना मुश्किल होता है, दुनिया में उतना मुश्किल कोई काम नहीं होता। कहा है, दुनिया में सबसे भयानक प्राणी पड़ोसी है, क्योंकि यह कोई भी हो सकता है और यह कुछ भी कर सकता है। तो फिर जो लोग व्यवहार-चतुर थे, उन्होंने एक सूत्र बनाया—गुड फ्रेन्ड्स मे गुड नेबर्स—अच्छे दोस्त अच्छे पड़ोसी हो सकते हैं। जहाँ हमारे घर की दीवार अलग हुई, दोस्त समाप्त हुए। इसलिए कहा गया है कि हमारे पड़ोसी और हमारे बीच में दीवार नहीं रहनी चाहिए। इस दीवार को हटाओ। इस दीवार को हटाने के लिए गांधी ने एक सूत्र दिया—स्वदेशी ही पड़ोसियत है, पड़ोसियत ही स्वदेशी है—जो मेरा पड़ोसी है वह मेरा मित्र बने, मेरा भाई बने, क्योंकि यह सबसे मुश्किल है।

मैं अपनी ही बात बताता हूँ। बड़े गर्व के साथ मैं यह कहा करता हूँ कि मैं मनुष्यमात्र पर प्रेम करता हूँ। मानवता-प्रेम से मेरा हृदय लबालब भरा है। एक दिन एक आदमी मुझसे पूछ बैठा, पाकिस्तान के आदमी को भी प्यार करते हो? क्या जवाब है? कोई जवाब नहीं।

महाराष्ट्र और कर्नाटक का बेलगाँव के लिए झगड़ा हो रहा है। तो ये दोनों महाराष्ट्र के और कर्नाटक के आदमी सारे भारत पर प्रेम कर सकते हैं, परन्तु एक-दूसरे पर कभी नहीं, क्योंकि पड़ोसी हैं। सगे भाइयों में सबसे ज्यादा विरोध होता है, क्योंकि समान स्वार्थ (इन्टरेस्ट कामन) है--**जहाँ स्वार्थ समान होता है वहाँ प्रेम करना बड़ा मुश्किल होता है।** इसलिए जितने झगड़े सगे भाइयों में होते हैं उतने झगड़े सौतेले भाइयों में भी नहीं होते, मौसेरे भाइयों में नहीं होते, चचेरे भाइयों में नहीं होते। एक बड़े पते की बात कही ईसा ने कि **'अपने पड़ोसी से प्यार करो'—यह सांस्कृतिक विकास है।**

हम अपने पड़ोसी को अपना भाई बनायें, यह कौटुम्बिक समाज हुआ।

केवल सामुदायिकता नहीं, कौटुम्बिकता

जहाँ रिश्तेदारी है वहीं कौटुम्बिकता है। एक-दूसरे के साथ रहने की इसमें आकांक्षा होती है। यही सच्ची राष्ट्रीयता है। जमीन का प्रेम राष्ट्रीयता नहीं है। एक-दूसरे से प्रेम राष्ट्रीयता है। जैसे पड़ोसी जीवन को तोड़ती है सम्प्रदायप्रधान धार्मिकता, वैसे ही कौटुम्बिक राष्ट्रीयता को तोड़ती हैं शासन-व्यवस्थाएँ। ये सरकारें एक देश के नागरिकों को दूसरे देश के नागरिकों से मिलने नहीं देतीं।

हिन्दू-मुसलमान, बंगाली-असमिया, मराठी-गुजराती, कानड़ी एक-दूसरे से प्रेम करें, इसके साथ ही यह भी जरूरी है कि हिन्दुस्तानी, पाकिस्तानी, चीनी, जापानी, जर्मनी आदि को भी प्यार करें। जमीन को तो प्यार करें ही, लेकिन जमीन से अधिक उस जमीन पर रहनेवाले आपस में एक-दूसरे के साथ रहना चाहें तथा अन्य देशों में रहनेवालों से प्रेम करें। यह पड़ोसियत है तो पड़ोसी बनो। पड़ोसियत निबाहने के लिए कौटुम्बिकता का विकास आवश्यक होता है। इसलिए परिवार बनाओ। हमारा पड़ोसीपन हमारा परिवार बन जाय। हमारा जो परिवेश होगा वह हमारा कुटुम्ब बन जायगा। यह धार्मिक विकास है। इसे मैं सांस्कृतिक विकास मानता हूँ।

विश्व-कुटुम्ब

ईश्वर ने हमें यह अवसर दिया है। इस देश को यह सुयोग दिया है कि यह विश्व-कुटुम्ब बन सकता है। विश्व-कुटुम्ब आकार का नहीं होता। विश्व-कुटुम्ब गुणात्मक है, क्वालिटेटिव चीज है। **भिन्न धर्मों तथा भिन्न देशों के थोड़े से लोग भी यदि विश्व-कुटुम्ब की बात कहते हैं तो वह आकार में चाहे जितना छोटा हो, लेकिन आशय में व्यापक होगा। जो आशय में व्यापक है उससे क्रान्ति आती**

है। रामायण में बहुत सुन्दर संकेत है। राक्षस सारे-के-सारे आकार से बड़े थे और ये जो अवतार थे यह कोई आकार से बड़े नहीं थे। रावण का तथा कुम्भकर्ण का वर्णन तो तुलसीदासजी ने यह किया है कि जब वह खुर्राटे लेता था तो इसके नकसुओं से हाथी और ऊँट भी अन्दर चले जाते थे। लेकिन राम का वर्णन--सुठि सुकुमार--कहकर किया गया है। जब राम-रावण-युद्ध शुरू हुआ तो विभीषण ने पूछा : "रावण के पास तो इतना बड़ा रथ है, साधन-सामग्री है। आपके पास तो रथ भी नहीं है, फिर लड़ाई कैसे जीतेंगे ?"

राम ने कहा : "सो स्यन्दन आना—वह रथ कुछ अलग है, जिस रथ के भरोसे मैं जीतता हूँ। मैं इस रथ के भरोसे नहीं जीत सकता।"

रावण के दस मुख हैं, बीस हाथ हैं, फिर भी राम हतोत्साह नहीं होता है। कारण इसका यह है कि राम का मुँह एक है, इसलिए उसके एक बाण में शक्ति है। यह गुणात्मक है मित्रो, आकार आसुरी है और गुण दैवी है !

गुण सभी धर्मों में समान हैं। वे एक-दूसरे को तोड़ नहीं सकते। फिर कौन-सी चीज है, जो धर्मों के नाम पर मनुष्यों को अलग करती है। वह है बपतिस्मा, खतना, जनेऊ, चोटी, दाढ़ी। क्योंकि यह तो धर्म है नहीं। अर्थात् जो धर्म नहीं है, वही तोड़ता है।

बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, नानक आदि अनेक महापुरुष आये। रामकृष्ण और विवेकानन्द आये, गाँधी आया, विनोबा आया। ये सब एक-एक कदम आगे बढ़ते चले गये। ये किसी धर्म के अनुयायी नहीं रहे। बाद में आये और आगे बढ़ते चले गये। अब हमें और एक कदम आगे बढ़ना है। और वह कदम यह होगा कि धर्मों के समाज नहीं बनेंगे, विश्व ही कुटुम्ब बनेगा।

राजगिरि में सर्वोदय-सम्मेलन हुआ तो विनोबाजी पाँच-सात मिनट बोले। उन्होंने एक बात कही : "आइन्दा इस देश में हिन्दू, मुसलमान, ईसाई कोई पैदा नहीं होगा, मनुष्य पैदा होगा और कौन-सा मनुष्य, जो सार्वभौम है। इसका अगला कदम है--'जय जगत्'--इसमें राष्ट्रीयता की सीमाएँ अलगाव के रूप में नहीं रहेंगी। मार्क्स का यही सपना था--वाइप आउट स्टेट बाउंडरीज--राज्य की सीमाएँ समाप्त करो।

मित्रो ! हमें सम्प्रदाय, जाति, प्रदेश और प्रान्त, क्षेत्र ये सारी सीमाएँ लाँघनी हैं। प्रथम कदम के तौर पर भारतवर्ष की हद में कम-से-कम, एक अखिल भारतीय मानस तो बने, जिसकी दिशा विश्व-कुटुम्ब की ओर जाने की हो। इस अखिल भारतीयता में भारत के अन्दर रहनेवालों की एकता पर जोर है। अन्य

राष्ट्रों से अलगाव पर नहीं। अपने राष्ट्र को श्रेष्ठ मानकर सोचने की बात नकारात्मक होती है। मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए तो भावरूप मानसिकता चाहिए। जो मानसिकता उस वक्त उभरती है, जब दूसरे देश से लड़ाई हो, वह जोड़ती नहीं। जैसे हिन्दुओं की अस्मिता कब उभरती है, जब मुसलमानों के साथ दंगा हो जाता है। दंगा समाप्त होने के बाद तीन तेरह हो जाते हैं। हम हम हैं, तुम तुम हो। हमरी-तुमरी चलती है। तो जो संकट के बिना एक नहीं हो सकते, उनमें जोड़ने की ताकत नहीं होती।

कौरव और पाण्डव एक हुए थे--चित्ररथ गन्धर्व जब ले गया, दुर्योधन को पकड़कर--वयं पंचाधिकं शतम्--हम पाँच नहीं हैं, एक सौ पाँच हैं--धर्मराज ने कहा। फिर जैसे ही वह चला गया तो सौ अलग और पाँच अलग और महाभारत हो गया। संकट के समय की एकता में भावरूप प्रकट नहीं होता। अब हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि यह भावरूप संकट के समय नहीं, अमन के समय भी प्रकट हो। एकता का यह भाव गतिशील सक्रिय शान्ति के रूप में प्रकट हो। उस शान्ति की स्थापना अगर इस देश में करनी है तो सम्प्रदायवाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, अब तो लिपिवाद भी है। इन सबका निराकरण करना होगा। तभी विश्व-कुटुम्ब की ओर कदम बढ़ेंगे और उस दिशा की सम्भावना प्रकट होगी।

कैसा धर्म है यह ?

प्रश्न उठता है कि विश्व-कुटुम्ब की सम्भावना कौन प्रकट करेगा ? इस कौन का स्वाभाविक उत्तर है आनेवाली पीढ़ी। लेकिन आनेवाली पीढ़ी की स्थिति क्या है ? ये तो पड़ गये दूसरे फेरे में। पुरानी पीढ़ी का यानी हमारा अनुकरण करके ये कहते हैं :

आसाम में बंगाली न रहे, गुजरात में मराठी न रहे, महाराष्ट्र और कर्नाटक में मराठी कानड़ी दोनों एक-दूसरों को अलग कर दें आदि-आदि।

इससे क्या होगा ? मल्टी नेशनेलिज्म बहुराष्ट्रवाद ही आयेगा न। बहुराष्ट्रवाद के लक्षण साफ दिखाई दे रहे हैं। आसाम में असमिया बोलनेवाले एम० ए० हो गये हैं। पी० एच० डी० हो गये हैं। बिहार में हिन्दी बोलनेवाले भी एम० ए० और पी० एच० डी० हो गये हैं। महाराष्ट्र में भी मराठी बोलनेवाले पी० एच० डी० हो गये हैं और जब ये रेल में मिलते हैं तो दो ही भाषाएँ हैं इनकी। एक तो घूँसे की है या आलिंगन की। कुश्ती की है या आलिंगन की।

मैसूर में पिक्चर गैलरी बहुत सुन्दर है। एक छोटा बच्चा मेरे साथ था। उसको मैंने एक चित्र दिखाया। उसने पूछा--"क्या है यह ?"

मैंने कहा : "राम-भरत-भेंट है। भाइयों में आलिंगन हो रहा है।"

फिर एक दूसरा चित्र दिखाया। उसने पूछा : "यह क्या है ?"

मैंने कहा : "यह कुश्ती हो रही है।"

दोनों चित्र देखकर बच्चा बहुत हैरान हुआ। उसने पूछा : "दोनों चित्रों में दोनों मनुष्य एक-दूसरे की छाती से छाती भिड़ा रहे हैं। आप एक को आलिंगन और एक को कुश्ती क्यों कहते हैं ?"

मैंने कहा : "पहले चित्र में एक-दूसरे को जो गले से लगा रहे हैं इसमें वे एक-दूसरे को आयुष्मान् होने की आकांक्षा रखते हैं, इसलिए वह आलिंगन है और दूसरे चित्र में एक-दूसरे का गला घोटना चाहते हैं, एक-दूसरे को मारना चाहते हैं, इसलिए कुश्ती है।"

विज्ञान ने मनुष्य को मनुष्य के सामने लाकर खड़ा कर दिया है। अब धर्मों को इसका जवाब देना है कि आमने-सामने खड़े मनुष्यों की कुश्ती होगी या आलिंगन होगा। लेकिन धर्म के नाम पर आज जितनी कुश्तियाँ हो रही हैं उतने झगड़े और किसी कारण नहीं होते हैं। न स्त्री के लिए, न जमीन के लिए--इसका कारण है कि धर्म के नाम पर जो एक-दूसरे को काटता है वह सीधा स्वर्ग में जाता है। मेरे सामने कभी सवाल आता है कि स्वामी श्रद्धानन्द को जिसने मारा होगा, भले ही उसे फाँसी हो गयी--श्रद्धानन्द तो हमारे शहीद हो गये। मारनेवाले को फाँसी हो गयी तो वह भी तो शहीद हो गया। दोनों शहीद क्या कभी एक ही स्वर्ग में पहुँचेंगे ? अब स्वर्ग इनका एक हो सकता है क्या कभी ? और अगर कहीं हो गया तो फिर से वह वहाँ भी श्रद्धानन्द को कत्ल करेगा।

कैसा धर्म है यह ?

अब गोडसे तो खूनी आदमी था, हत्यारा था। उसने गांधी को मारा। गांधी शहीद हो गया। गोडसे को फाँसी हुई। वह भी शहीद हो गया। अब इन दोनों के अलग-अलग स्वर्ग होंगे, अलग-अलग भगवान् होंगे।

आज जिसको हम धर्म कहते हैं वह तो दो ईश्वरों के भी युद्ध कराता है। आज यह जो टकराव है, बिखराव है, इसमें धर्म सबसे अधिक अपराधी है, गुनहगार है। अतः इस चीज को हम समझें तो सर्वधर्म-समभाव के रहस्य को भी समझ सकेंगे।

विचार का वैभव

दो भूमिकाएँ

नागर शब्द का संस्कृत में अर्थ है, जो दूसरों के साथ रह सकता हो। अंग्रेजी में भी पोलिटिक्स शब्द जो निकला है वह पोलिश से निकला है। पोलिश का अर्थ है नगर। जो नगर में रह सकता है वह पोलिटिशियन कहलाना चाहिए लेकिन अर्थ बदलकर संकुचित हो गये, संकीर्ण हो गये। नागरिक वह है, जो दूसरों के साथ रह सकता हो। अगल-बगल में नहीं, सिर्फ पड़ोस में भी नहीं, साथ-साथ। यह सह-अस्तित्व है। एक-दूसरे के साथ रहने का नाम जीवन है। इसके सिवा जीवन हो ही नहीं सकता। अकेले में रहना जीवन-विमुखता है। दूसरे के बिना जीवन सम्पन्न नहीं होता, अभिमुखता में जीवन है। परस्पराभिमुखता यही जीवन है। मुझे ऐसा लगता है कि भारतवर्ष की वैचारिक भूमिका यही रही है। आचरण तो नहीं रहा है—हमारे यहाँ दुर्भाग्य से कुछ ऐसा हुआ है कि सिद्धान्त के साथ आचरण का मेल नहीं बैठा। इसीलिए यह देश दुनियाभर के पतित देशों में है। जिसका सिद्धान्त बहुत ऊँचा हो और आचरण बहुत नीचा हो वह कहीं का नहीं रह जाता है। यह हमारे देश का भी हुआ। इसीका नतीजा यह हुआ कि इस देश ने अतिथि का स्वागत किया। यह रही है भारत की भूमिका।

अंग्रेजी में एक कहावत है—एवरी इंग्लिश मैन्स हाउस इज ए कैशल—हर अंग्रेज का मकान उसका एक किला है। किले का लक्षण क्या है? इसे दुर्ग कहते हैं। इसमें प्रवेश निषिद्ध होता है। आने की मुमानियत है और रोकने का इंतजाम है। मजबूत फाटक है। उनमें कीलें लगी हुई हैं और चौकीदार पहरे पर बैठे हुए हैं, जिससे कोई भीतर न आ सके। यह किला है, मकान नहीं है। यह योरोप की भूमिका है।

इसके विपरीत भारत की कल्पनाएँ क्या थीं? जो आया है वह यजमान है, वह पूजा के योग्य है, क्योंकि अतिथि है। अपरिचित मानव की पूजा उसका स्वागत है। यह उसका स्वभाव है, जिसके साथ कोई परिचय नहीं है।

अनाग्रह की भूमिका

दूर के करिले नीकर बंधु, परके करिल भाई—रवि ठाकुर ने गाया। उसने भगवान् से कहा है कि तेरी कितनी कृपा है कि जो दूर थे वे निकट आ गये और

जो पराये थे वे भाई हो गये, मित्र हो गये। यह जो प्रक्रिया है इसे सांस्कृतिक प्रक्रिया कहते हैं और यह हमारे देश की भूमिका रही है। यह वैचारिक भूमिका तो भारत की आज भी है, लेकिन उसके लायक हम नहीं रहे, उसके योग्य हम नहीं बन सके। भूमिका व्यापक रही, जीवन व्यावर्तक हो गया। व्यावर्तक अलगाव का, दूसरों से दूर रहने का, हटने का, अपनी-अपनी चहारदीवारी में बन्द रहने का। तुम अपनी चहारदीवारी में रहो, हम नहीं छेड़ेंगे। हम अपनी चहारदीवारी में रहें तो तुम मत छेड़ो। यह जो अलगाव का व्यावर्तक जीवन था इसके कारण सिद्धान्त व्यापक रहते हुए भी हम इसकी ओर कदम नहीं बढ़ा सके और अब तक उसी प्राचीनता का गुणगान किये बैठे हैं। प्राचीनता में जो वैभव था वह विचार का था। आचरण प्रतिबिंब था विचार का। अब क्या हुआ? आचरण का स्थूल रूप तो रह गया, लेकिन विचार की शोध रुक गयी। इसलिए मानवता का विकास भी हमारे देश में एक स्थान पर आकर रुक गया। मानवता तो इतनी थी कि पशु और कीटक भी उसमें शामिल किये गये। जितनी सभ्यताएँ आयीं वे सब घुल-मिल गयीं। वैदिक सभ्यता आयी, बौद्ध आये, जैन आये, भिन्न सम्प्रदाय थे, लेकिन व्यापकता को बढ़ानेवाले थे। इतना ही नहीं स्याद्वाद के नाम से जो विचार आया, उससे तो विचार-सम्पदा में चार चाँद लग गये। विचार से, चिन्तन से जो ठीक लगे वही मानो। कुछ भी अनिवार्य नहीं है। यह संदेहवाद भी नहीं है, शंका है, लेकिन संशयवाद नहीं है। हम जो देखते हैं, जानते हैं, उसके बारे में बुद्धि का निर्णय है। आचरण में भी चरितार्थ का प्रयत्न है, कोशिश है। लेकिन इसके सिवा भी यह हो सकता है। यह भी मानते थे, समझते थे।

मास्टर ने कहा कि इस मेज का चित्र खींचो। लड़के अलग-अलग बैठे हुए थे तो किसीने दो टाँगें बनायीं, किसी ने तीन टाँगें बनायीं। एक लड़के ने सीधी लाइन और दो आड़ी लाइन—एक सीधी लकीर और दो आड़ी लकीरें। बस, इतनी हो मेज बनायी। मास्टर ने कहा कि सबका ठीक है। सबने मेज ठीक-ठीक बनायी है। ऐसा मास्टर ने इसलिए कहा कि मेज के जितने पहलू जिस कोण से जिसने देखे वैसी मेज उसने बनायी, क्योंकि किसी भी वस्तु के सारे पहलू, सारे पक्ष हम देख नहीं पाते। यह अनाग्रह है। मानवता में होती है विनम्रता। विनम्रता से आता है अनाग्रह और अनाग्रह ही विचार का वैभव है।

'विद्या विनयेन शोभते'।

जितनी विद्या अधिक होगी, नम्रता उतनी ही अधिक होगी। विद्या से यदि अहंकार आ जाता है कि मेरी ही बात सही है, दूसरे की नहीं, तो ज्ञान कुंठित हो जाता है। जिज्ञासा, एन्क्वायरी इन्टेरोगेशन, मनुष्य का स्वभाव है। इसे जानने

की इच्छा कहते हैं और जहाँ जानने की इच्छा है वहाँ दूसरे की बुद्धि का आदर है। इसमें से व्यापकता आती है। यह जो बौद्धिक अनाग्रह है इसमें से ज्ञान की व्यापकता आती है, जिज्ञासा का विकास होता है। विकास ज्ञान का हो सकता है। यह तभी संभव है, जब सत्य को ग्रहण करने की भूमिका हो। यह भूमिका अनाग्रह से बनती है।

प्राचीन भूमिका भारत की यही रही है। जब से यह भूमिका खंडित हुई है तब से अलगाव शुरू हुआ। नागरिक की भूमिका अलगाव की होगी तो अशान्ति बढ़ेगी। भारत में आज हर नागरिक की भूमिका व्यावर्तक है। कृष्णा नदी का पानी कौन पीये? कौन-सी भाषा बोलनेवालों का कहाँ अधिकार हो? यह चल रहा है। नर्मदा का पानी कौन पीये? इसका झगड़ा चल रहा है। सद्‌भाग्य की बात इतनी ही है कि गंगाजी का पानी कौन पीये। अभी इसका झगड़ा नहीं हुआ है। इस प्रकार के झगड़े की जड़ में ज्ञान का अभाव है। इस अभाव का कारण है आग्रह।

उपनिषद् में एक कथा आती है। पुत्र ने पिता से कहा :

"मुझे ब्रह्म का ज्ञान दीजिये।"

पिता कहते हैं : "तीन दिन उपवास कर और तीन दिन उपवास करके अपने भीतर ही खोज।"

तीन दिन बाद वह आया। कहने लगा, "हाँ, मालूम हो गया।"

पूछा : "क्या मालूम हुआ?"

उत्तर मिला : **"अन्नं ब्रह्मेति जानामि।"**

अन्न के कारण ही मनुष्य जीता है। पैदा अन्न से होता है और अन्न में ही अंत में प्रवेश कर जाता है। कहानी और आगे बढ़ती है। अन्त में **आनन्दं ब्रह्मेति जानामि** तक पहुँच गया, लेकिन शुरू कहाँ से हुआ-- **अन्नं ब्रह्मेति जानामि**। हमारा देश आज इसी भूमिका पर है। जो अन्न को ही ब्रह्म मानता है उसका ज्ञान, उसकी बुद्धि, उसका हृदय उसीके अनुरूप बन जाता है।

संस्कृत के एक पंडित बीमार हो गये। जब बीमारी समाप्त हुई तब डॉक्टर ने कहा कि और एक महीना अन्न नहीं खाना है। पंडित परेशान हो गया। उसकी तबीयत नहीं लगती थी, क्योंकि चंचल हो गये थे खाना खाने के लिए। दूसरा पंडित उनके घर आया करता था उसने अपनी लड़की को भेजा कि दिल बहलाने के लिए उनको काव्य या साहित्य वगैरह सुनाया करो। क्योंकि पंडितजी हैं इस-

लिए लड़की मृच्छकटिक नाटक लेकर आयी। उसमें एक प्रसंग आता है कि चारुदत्त दिखाता है वसन्तसेना को कि देख, चाँद आ रहा है। यह जो चाँद आ रहा है वह मुझे सुन्दर स्त्री के जैसा दिखाई दे रहा है। तो यह पंडित झल्लाया। सब्र नहीं रख सका। धीरज उसका टूट गया। कहने लगा, यह चाँद मुझे तो पूड़ी और कचौड़ी जैसा जँचता है। इसमें कहाँ है सुन्दर स्त्री का चेहरा ?

भूखे की संस्कृति

भूखे का एक दर्शन होता है। उसके दूध के समुद्र होते हैं। उसके देवता भी दूध के समुद्र में रहते हैं। उसके सपने भी भूख के रहते हैं। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि इस भूमिका को हमें पहचानना चाहिए और तब अपने दर्शन की तरफ देखना चाहिए।

दूसरी चीज जो महावीर के साथ आयी, जैनियों के साथ आयी, वह यह आयी कि पशु-पक्षी-कीटक, सबके प्रति हमारी करुणा और निष्ठा हो। इसका परिणाम निरामिष-व्रत का प्रारम्भ हुआ। पशुओं-पक्षियों को और कीटकों को भी अपने जीवन में शामिल कर लिया। बहुत बड़ी चीज है यह। लेकिन इसके साथ-साथ जो भूख का दर्शन था वह नहीं गया। नतीजा यह हुआ कि मनुष्य कीड़ों को बचाने के लिए पानी को भी छानकर पीने लगा। माफ कीजियेगा, मैं एक कठोर बात कहने जा रहा हूँ। पानी को छानकर पीनेवाले भी मनुष्यों को साबित ही निगल जाते हैं। जीवन में कैसा विरोध आता है, इसका संकेत मैं कर रहा हूँ। मैं कोई उनकी निन्दा नहीं कर रहा हूँ।

मनुष्य ने पशु को अपने जीवन में दाखिल करके, संस्कृति की दिशा में एक कदम आगे बढ़ाया। मनुष्यों को दाखिल किया ही था। लेकिन पशु की चिन्ता क्यों ? मनुष्य की अपेक्षा पशु की चिन्ता क्यों ? पशु भोग-योनि है, मनुष्य कर्म-योनि है। मनुष्य अपने कामों के लिए जिम्मेवार है। पशु अपने कामों के लिए जिम्मेवार नहीं है, क्योंकि वह अपने जीवन को बदल नहीं सकता। पशु और देवता अपने जीवन को बदल नहीं सकते। उसे भोग-योनि कहते हैं। मनुष्य को कर्म का अधिकार है, इसलिए उसको जिम्मेवार माना। उसने पशु की तरफ ध्यान दिया। नतीजा यह हुआ कि पशु के लिए दया रह गयी और मनुष्य के लिए करुणा का अभाव होता चला गया।

मनुष्य के लिए करुणा का भाव समाप्त हो गया है। इसकी पुनर्स्थापना करनी होगी।

यह कैसे होगी ?

भारतीय संस्कृति का जो ऊँचा दर्शन है उसके साथ व्यवहार की तालमेल बैठानी होगी। जातियों ने, साधकों ने, विद्वान् आचार्यों ने तथा सेवक कहे जाने-वाले समुदाय ने अपने को आम नागरिक से अलग कर लिया है। ये जीवन से कट गये हैं। अपने लिए विशेष सुविधाओं की माँग करते हैं। इनके जितने संघ बनते हैं वह सब अपने लिए सुविधा माँगने के लिए बनते हैं।

मित्रो! भारतीय परम्परा में जिन सांस्कृतिक मूल्यों का हम गुणगान करते हैं, उनको चरितार्थ करने के लिए उस बहुसंख्यक समाज की ओर अभिमुख होना होगा, जो अन्न को ही ब्रह्म समझता है। भूखा संस्कृति की रक्षा नहीं कर सकता।

भारत का प्राचीन दर्शन जितना ऊँचा है उसके लायक हम नहीं रहे। जीवन बिखर गया। इसके दो कारण रहे :

१. प्राचीन चिन्तन के आधार पर जो स्थूल आचरण बना था उसके प्रति तो आग्रह रहा, परन्तु विचार-शोध की प्रक्रिया रुक गयी।

२. विचार शोध करनेवाले विद्वानों का सम्पर्क आम आदमी से नहीं रहा तो विचार का वैभव नष्ट होता चला गया।

भारत की मानवीय उदात्त भूमिका के विकास के लिए यह जरूरी है कि विचार की शोध सतत चले और शोधक विद्वानों का सीधा सम्बन्ध आम आदमी से रहे। ऐसा होने पर ही उभरती हुई व्यावर्तक भूमिका से निजात हासिल हो सकेगी। वास्तव में यही विचार का वैभव होगा। •

नागरिक विश्वविद्यालय क्या करेगा ?

हमने अपने अहंकार में कुछ ऐसा मान लिया है कि हम मनुष्य का निर्माण करेंगे। मैं इसे शैतान का काम मानता हूं। क्योंकि मनुष्य का निर्माण तो भगवान ने किया है। उसे मनुष्य रहने दें। मनुष्य होने में जो रुकावटें हैं उनको दूर करें, अगर कर सकते हैं तो। लेकिन किसी का हम निर्माण करें चाहे प्राचीन गुरु हों, चाहे आधुनिक शिक्षण शास्त्री हों वह अगर यह कहते हैं तो भगवान का स्थान लेना चाहते हैं। तो जो भगवान का स्थान लेना चाहता है वही शैतान कहलाता है। भगवान की जगह का दावेदार ही शैतान है। मैं बहुत नम्रतापूर्वक यह कहना चाहता हूं कि शिक्षण का काम मनुष्य बनाना नहीं होना चाहिए। मनुष्य रहने में जितनी रुकावटें हैं उनका निवारण करने में शिक्षण सहायक हो।

हर व्यक्ति अपने में एक विभूति है, एक पूर्णांक है। वह समाज या समष्टि का एक अंश नहीं है। अपने में पूरा है। कोई दुर्घटना होती है और मेरा बेटा या दामाद उसमें समाप्त हो जाता है तो वह मेरे लिए सौ फीसदी है इतने आदमियों में से एक नहीं है। इसे मैं बहुत बड़ा सद्भाग्य मानता हूं कि अब तक हजार कोशिश करने पर भी मनुष्यों को कोई गढ़ नहीं सका और दुनिया बदलती गयी। यह भगवान की बड़ी कृपा है।

नयी दिशा की खोज

एक कालेज में भाषण देने गया था। भाषण में लड़के-लड़कियाँ कुछ अधिक थीं। मैंने भाषण किया। उसके बाद एक लड़का खड़ा हुआ सवाल पूछने। उसने मुझसे कहा : "हमारे शिक्षक भ्रष्ट हैं।"

मैंने कहा : "ठीक है।"

उसने कहा शासक भ्रष्ट हैं—"मैंने कहा यह भी ठीक है।"

उसने कहा नेता भी भ्रष्ट हैं—"मैंने कहा यह भी ठीक है।"

मैंने कहा : "तुम सब ठीक कह रहे हो।"

इतना सुनकर लड़का बैठ गया। मैंने पूछा : "बैठ क्यों गये?" तो कहने लगा आपने जब सब स्वीकार कर लिया तो और क्या करूँ।

मैंने उससे कहा कि तुम्हारे पास यदि कुछ कहने के लिए नहीं है तो मेरे पास है कुछ कहने को कि तुम हमारी औलाद हो, अब तुमसे प्रार्थना यह है कि हमारी नकल न बनो। परिवर्तन तभी होगा जब तुम हमारी नकल नहीं बनोगे। इसी प्रकार शिक्षण में जो परिवर्तन लाना चाहते हैं वे सब पुराने आदमी हैं। अपनी ही तरह का दूसरा आदमी बनाना चाहते हैं। तो ये स्कूल-कालेज क्या मनुष्य ढालने के कारखाने हैं। पिता के जैसा ही यदि पुत्र हो तो क्या गाँधी पैदा होता, शिवाजी पैदा होता, नानक हुआ होता, श्रीकृष्ण हुआ होता ? ईश्वर की कृपा से ये अपने पूर्वजों-जैसे नहीं हुए इसलिए दुनिया आगे बढ़ सकी। अतः सारे नौजवानों से मेरा यही निवेदन है कि परिस्थिति को आँख खोलकर देखें और उसमें से नयी दिशा की खोज करें।

परिस्थिति का आकलन

सबकी बात ध्यान से सुनिये, सबका आदर भी कीजिये। मैंने उसी कालेज में कहा था कि मैं अपनी आकांक्षा, अपने अरमान आपके चरणों में निवेदन करने आया हूँ।

मुझसे पूछा : "अब आपकी कौन-सी आकांक्षा रह गयी है।"

मैंने कहा : "जब तक जीवित हूँ तब तक तुम्हारा कन्धा पालकी उठाने के लिए चाहिए और मर गया तो अर्थी उठाने के लिए चाहिए। इससे अधिक और कोई आकांक्षा मेरी नहीं है।" इससे अधिक आकांक्षा होनी भी नहीं चाहिए। जिनको जीना है वे रास्ता खोजें। पुराना रास्ता पुराने मुकामों पर ले जायगा। आपको यदि किसी नयी जगह पहुँचना है तो नये रास्ते खोजने होंगे। जिस जमाने में मैं पैदा हुआ तब से अब जब बूढ़ा हो गया हूँ मैंने यही समझा कि यह दुनिया मनुष्यों के रहने योग्य नहीं रह गयी है। मनुष्य के नाप की नहीं है, मनुष्यों के रहने योग्य नहीं है।

मैं पढ़ता था। हमारे साथ हमारे घर की नौकरानी का लड़का भी पढ़ता था। मेरी माँ मालकिन और उसकी माँ नौकरानी, लेकिन हम दोनों तो साथी थे। साथ-साथ पढ़ते थे, कुश्ती भी खेलते थे। साथ लेट भी जाते थे, साथ खाते-पीते भी थे। लेकिन देखा क्या कि स्कूल को जाते समय मेरी माँ कलेवे का लड्डू लेकर पीछे आती थी। जरा-सा खा ले और जा। कपड़ों में सिलवटें पड़ गयी हैं, कपड़े बदल ले। सब करता था।

फिर उसके घर जाता था। स्कूल में जाने के लिए उसे साथ लेने। उस समय उसके घर क्या देखता था—

वह लड़का माँ का आँचल पकड़ कर रो रहा है। कह रहा है : "रात की बासी रोटी बची हो तो कम से कम मुझे एक टुकड़ा दे दे, स्कूल से आकर भोजन करूँगा। एक ही कुर्ता है। सूखा भी नहीं है। रो रहा है स्कूल कैसे जाऊँगा ? नहीं जाऊँगा तो सजा होगी।"

मित्रो ! मैं इसी दुनिया में पैदा हुआ हूँ और इसी दुनिया में बूढ़ा हो रहा हूँ। क्या इस दुनिया को तुम बदलोगे ? अगर बदल सकोगे तो मैं समझता हूँ तुम्हारा जीवन सफल होगा।

अभी कुछ साल पहले एक मेले में गया था। बहुत-सी दूकानें मिठाइयों की थीं। मेरे एक मित्र ने कहा कि यहाँ की यह मिठाई बहुत मशहूर है। थोड़ी खरीद लें। थोड़ी खायेंगे भी और थोड़ी घर ले जायेंगे।

मैंने कहा : "खरीद लो।"

सामने एक आदमी खड़ा था। मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। उससे पूछा : 'क्यों खड़े हो ?"

उसने जवाब दिया : "बाबूजी भूखा हूँ।"

"खाते क्यों नहीं ?"

"कैसे खाऊँ पैसा जो नहीं है।"

जहाँ भूख है वहाँ अन्न नहीं है और जहाँ अन्न है वहाँ भूख नहीं है। भूख लगने के लिए दवा लेनी पड़ती है।

यह भगवान का इन्तजाम है क्या ? क्या भगवान इतना निर्बुद्ध होगा ? इतना जड़ होगा कि इतनी भी तमीज नहीं कि :

जहाँ बीमारी है वहाँ दवा हो और जहाँ भूख है वहाँ अन्न हो।

यह सब क्यों हो रहा है ?

चीज उसको नहीं मिलती जिसको जरूरत है। उसको मिलती है जो खरीद सकता है।

खरीदनेवालों की यह दुनिया है।

जो खरीद नहीं सकता वह सड़क के किनारे पटरी पर सोये तो वहाँ से हटा दिया जाता है।

पुल के नीचे स्थान खोजे तो वहाँ से हटा दिया जाता है।

सड़क पर भीख माँगे तो वहाँ से उसको निकाल देते हैं।

मुझे बतलाइये कि क्या इस ईश्वर की धरती पर उसका कोई उत्तराधिकार नहीं है जो खरीद नहीं सकता।

खरीदनेवाले की दुनिया होगी तो इन्सान भी खरीदा जायगा। भगवान भी खरीदा जायगा, हैवान तो खरीदा जाता ही है।

इसके बदलने का संकल्प अगर हमारे तरुणों के चित्त में नहीं है तो यह शिक्षण भी नहीं बदल सकता।

इसे मेरी गुस्ताखी समझिये चाहे जो समझिये, लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि आज के शिक्षण को कोई बदलना नहीं चाहता। न विद्यार्थियों के अभिभावक चाहते हैं, न विद्यार्थी चाहते हैं और न नागरिक चाहते हैं। क्योंकि जो चीज नागरिक चाहता है वह होकर रहती है।

नागरिकों ने चाहा कि भाषिक राज्य बने। वह बन गये।

जवाहरलालजी खिलाफ थे, सरदार खिलाफ थे, अम्बेडकर खिलाफ थे। सबके विरोध के बावजूद भी बन गये।

नागरिक चाहेगा कि विश्वनाथ के मन्दिर के रास्ते पर ज्यादा भोड़ हो या न हो तो होकर रहेगी।

जो चीज नागरिक चाहता है वह होती ही है।

आज का विद्यार्थी यदि शिक्षा परिवर्तन के मामले में गम्भीर होता तो यह कह देता कि हमको यह शिक्षण नहीं चाहिए। उसके ऐसा कहने पर शिक्षण बदल जाता।

मित्रो! इस शिक्षण में परिवर्तन कोई नहीं चाहता है। इतना ही चाहता है कि इसी समाज में इसी व्यवस्था में उसे सम्मान, सम्पत्ति और सत्ता मिले। इसके लिए होड़ है। हम जरा सवाल को खोलकर देखें। शिक्षा में परिवर्तन अर्थात् क्या? हम अधिक से अधिक इतना ही कहते हैं कि शिक्षा जाब-ओरियेन्टेड हो। 'जाब ओरियेन्टेड' इसका क्या मतलब है? जाब चाहिए अर्थात् नौकरी चाहिए। नौकरी दिलाने का काम सरकार का माना जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि सारे राष्ट्र को सरकारी नौकरों का राष्ट्र बनाना चाहते हैं। हमारे जीवन की जिम्मेदारी यदि सरकार की है तो राज्य-निर्भरता हमारे समाज का मुख्य धर्म होगा और आत्म-निर्भरता का लोप हो जायगा, जो हो रहा है। आप सोचिये इसको।

मैकाले का नाम लिया जाता है, लेकिन मैकाले से बहुत पहले राजा राममोहन राय इंग्लैंड गया था, रानी मलिका से प्रार्थना करने कि यहाँ अंग्रेजी शिक्षण शुरू

कीजिये। नतीजा यह हुआ कि वेदकाल से आज तक कभी जिनमें कोई शिक्षण नहीं मिला था उनको शिक्षण मिला है। उनमें से जगजीवन राम पैदा हुआ, अम्बेडकर पैदा हुआ, नहीं तो इनको कोई मौका ही नहीं था। इसके इस पहलू को भी सोचिये। इस देश को पुरातन भारत की प्रतिलिपि नहीं बनाना है। प्रतिकृति नहीं बनाना है और न किसी आधुनिक देश की ही प्रतिलिपि बनाना है। लेकिन जैसा अभी कहा गया कि नागरिक खो गया है इसका दोष हम अंग्रेजों को देते हैं। अंग्रेजों को हम जितना चाहें कोसें, लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद से क्या आप किसी अखिल भारतीय नागरिक का नाम ले सकते हैं? नहीं ले सकते। क्यों? क्योंकि स्वराज्य के बाद बँटवारे का युग आया और बँटवारे के साथ बिखराव आया। न अखिल भारतीय मानस है और न अखिल भारतीय कोई व्यक्ति है। इस काशी में भी नहीं है जो पृथ्वी खंड से बाहर मानी जाती थी, विश्वनाथ की नगरी जहाँ का कोई राजा नहीं है। जहाँ के राजा को उस पार रहना पड़ता है। इस काशी में भी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जिसका नाम लिया जा सके कि सारा भारत इसको जानता है। मेरा निवेदन है कि भारतीयता का पुनर्जीवन करो। भारतीयता खंडित हो गयी है, भारतीय नागरिक खो गया है।

प्रश्न उठता है कि भारतीय नागरिक कहाँ खो गया? वह खो गया जाति में। उसकी नागरिकता खंडित हुई जाति में। किसी शहर में, किसी गाँव में जाइये। मुहल्ले के नाम, गाँव के नाम जातियों पर आधारित मिलेंगे। मैं आपसे जिम्मेदारी के साथ कहना चाहता हूँ कि इस देश में यदि जातिस्तान नहीं होते तो पाकिस्तान भी नहीं बनता। पाकिस्तान जातिस्तान की सन्तान है। क्योंकि ये सारी जातियाँ अगल-बगल में रहीं, साथ कभी नहीं रहीं। जहाँ मनुष्य मनुष्य के साथ नहीं रहता है वहाँ कोई किसी प्रकार की सामाजिकता नहीं आ सकती। वह भारत में भी नहीं आयी है, आज तक नहीं आयी है। हर चुनाव में जातियों की अभिव्यक्ति खुले रूप से होती है और सबने उसको मान लिया है। संविधान में है कि सम्प्रदाय, जाति, वर्ण, वर्ग किसी का विचार नहीं होगा। यहाँ तक कि स्त्री-पुरुष का भी विचार नहीं होगा। सब समान नागरिक होंगे। लेकिन वह नागरिक है कहाँ।

नागरिकता का विश्लेषण

आज यह स्थिति है कि छोटे-छोटे घरौंदों में हम रह रहे हैं। हमारी चहार-दीवारी क्षितिज से दूर-दूर जा रही है। हर दिन अधिक संकीर्ण हो रहे हैं। इस देश में नागरिक हैं, लेकिन कितने नागरिक हैं? शुद्ध नागरिक कहाँ हैं? जो हैं उनके सबके पीछे कुछ न कुछ विशेषण लगा हुआ है। सारे ऐसे ही नागरिक हैं।

मौलाना मुहम्मदअली ने कहा था कि धार्मिक दृष्टि से मुसलमान के नाते महात्मा गाँधी से एक मामूली मुसलमान भी श्रेष्ठ है। धार्मिक दृष्टि और कौन-सी होती है मुझे पता नहीं। लेकिन उन्होंने यह कहा था। यह भी कहा कि मैं मुसलमान पहले हूँ, बाद में हिन्दुस्तानी। मैंने मौलाना मुहम्मदअली का नाम उदाहरण के लिए लिया। ऐसे व्यक्ति केवल मुसलमानों में ही नहीं थे, सभी सम्प्रदायों में ऐसे लोग थे और आज भी हैं।

एक मुसलमान था बैरिस्टर मुहम्मदआलम, लाहौर का, पाकिस्तान से पहले। उससे भी किसी ने पूछा : "तुम पहले मुसलमान हो या पहले भारतीय।"

उसने जवाब दिया : "तुमको सवाल पूछना ही नहीं आता। सवाल सही पूछो। तुम यह पूछो कि तुम पहले अपने बाप के हो या पहले अपनी माँ के। इतना क्यों नहीं पूछते। मेरा जवाब यह है कि मैं माँ का भी हूँ, बाप का भी हूँ और दोनों का साथ-साथ हूँ। और इसीलिए उनका लड़का हूँ।" उसने यह जवाब जरूर दिया, लेकिन आज नागरिकता बँटी हुई है। उसके कई प्रकार हैं।

१. **साम्प्रदायिक नागरिकता**—साम्प्रदायिक नागरिकता का अर्थ क्या है वह भी आप लोगों के सामने स्पष्ट कर दूँ। जब मैं अपने धर्म को या जाति को नागरिकता का आधार बनाता हूँ तो मैं सम्प्रदायवादी हूँ। मैं अमुक जाति का हूँ या अमुक जाति का हूँ इसलिए मेरी नागरिकता अलग है, मेरा राष्ट्र अलग है। यह मुसलमानों ने शुरू किया इस देश में। लेकिन वह शुरू इसीलिए कर सका क्योंकि हमारे हिन्दू समाज में जाति थी। जो जाति के आधार पर नागरिकता का दावा करती है वह पाकिस्तान बनने को नहीं रोक सकती थी। नागरिकता का दावा भाषा के आधार पर भी हो रहा है।

जिस देश में लोकतंत्र हो और जिस देश में संख्या उन नागरिकों की ज्यादा हो जो सम्प्रदायवादी तथा जातिवादी नहीं हैं तो पाकिस्तान बन ही नहीं सकता था।

डिनोमिनेशनल है साम्प्रदायिक नागरिकता जिसमें हम जुड़े हुए हैं आज भी। चित्त में हमारे थियोक्रेसी है इसे मैं धर्माश्रित नागरिकता कहता हूँ।

२. **हाइफोनेटेड नागरिकता**—दूसरी नागरिकता हमारे देश में वह है हाइफोनेटेड नागरिकता। आप जानते हैं दो शब्दों को जब मिलाना होता है तो बीच में हाइफन लगाते हैं, यह छोटा डैश होता है, उसे हाइफन कहते हैं। हाइफोनेटेड नागरिकता कैसी है ?

तुम कौन हो ?

मैं महाराष्ट्रियन भारती हूँ।

तुम कौन हो ?

मैं बंगाली भारती हूँ। मैं पंजाबी भारतीय हूँ। मैं तमिल भारतीय हूँ। मैं गुजराती भारती हूँ। अब इसमें भारतीय कामन टर्म है जो कैन्सिल हो जाती है और दूसरी सब बच जाती है। दूसरी नागरिकता है जिसके आधार पर भाषिक राज्य बने। मैं इसे हाइफोनेटेड कहता हूँ।

३. **गौण नागरिकता दोयम, (सेकेन्डरी सिटिजनशिप)**—जहाँ जो अल्पसंख्या में है वहाँ वह सेकेन्डरी है। चाहे भाषिक अल्पसंख्यक हो, साम्प्रदायिक हों, जाति हों, किसी प्रकार की अल्पसंख्या हो जो अल्पसंख्यक हैं वह अल्पसंख्यक हैं और वह मैजोरिटी (बहुसंख्या) की कृपा पर जीते हैं। वह सेकेन्डरी है, दोयम नागरिक हैं। महाराष्ट्र में गैर-मराठी, गुजरात में गैर-गुजराती, इस तरह से एक गौण नागरिकता भी हमारे देश में है।

४. **आंशिक नागरिकता**—आंशिक नागरिकता यानी उसे समूचा इन्सान ही नहीं माना गया है। यह दो हैं। एक स्त्री है, दूसरा है अछूत। इनको साबित इन्सान (समग्र मानव) नहीं माना गया। वह प्राइमिनिस्टर वगैरह सब बन सकती है। संविधान में उसे नागरिक माना है लेकिन उसकी नागरिकता वास्तविक नहीं हो सकी। इसमें स्त्री और अस्पृश्यों का भी दोष है लेकिन मुख्य दोष वर्तमान सामाजिक ढाँचे का है; क्योंकि उसकी नागरिकता की वास्तविकता केवल विधान में है, उससे बाहर समाज में नहीं है। इसलिए फ्रैक्शन सिटिजनशिप ही है आंशिक नागरिकता। क्योंकि वे समूचे मानव नहीं हैं।

उभरती अस्मिताओं का स्वागत

अछूत और स्त्रियों की अस्मितायें थोड़ी-थोड़ी उभर रही हैं। यह क्यों उभर रही है, उनको शिक्षण मिला इसलिए। आप शिक्षण को चाहे जितना कोसिये, शिक्षण नहीं होता तो यह अछूत की अस्मिता विकसित नहीं होती। आज इनकी भी अस्मिता उभर रही है। अब ज्यों-ज्यों इनकी अस्मिता व्यक्त हो रही है त्यों-त्यों सवर्ण बचाव के पैतरे पर, संरक्षण के पैतरे पर जा रहे हैं। स्त्रियाँ और अछूत जब तक पुरुष और सवर्णों की कृपा से जीते थे तब तक बड़े उदार थे। इनको मौका दो इनको मौका दो, इनको अवसर दो कहा जाता था--लेकिन जब वे स्वयं अवसर खोजने लगे और अवसर पाने की शक्ति प्राप्त करने लगे तो हम (पुरुष तथा सवर्ण) बचाव पर चले गये। क्या होगा इसमें से। ये जो उभरती

हुई अस्मिताएँ हैं इन अस्मिताओं में स्त्री और अछूत की अस्मिता का स्वागत होना चाहिए। क्योंकि ये परिवर्तन के अनुकूल हैं। जैसे श्रमिक की अस्मिता है जो परिवर्तन के अनुकूल है। जिसे आप क्लास कांशियसनेस (वर्ग चेतना) कहते हैं मजदूर की। यह जो उसकी चेतना है वह समाज परिवर्तन के अनुकूल है।

आपने ऋषियों, मुनियों व ऋषिकुल का नाम लिया। मुझे भी बड़ा अभिमान है लेकिन क्या हमने यह कभी सोचा है कि उन ऋषियों का जन्म कैसे हुआ था। किन परिस्थितियों में हुआ था। मराठी में एक कहावत है, एक संकेत है :

ऋषि का कुल और नदी का मूल मत देखो

नहीं तो तुम्हारे दिल में उनकी इज्जत नहीं रहेगी। फिर भी उनका जन्म चाहे जैसे हुआ हो इन ऋषियों ने हमको दिव्य ज्ञान दिया। लेकिन इसमें कभी भंगी का प्रवेश हो सकेगा ? उसकी अस्मिता के लिए अवसर है इसमें कोई ? यह सारी हमारी जो प्राचीन संस्कृति थी क्यों उसके दिल में गर्व रहे इसका। क्योंकि उसको तो भंगी ही रहना है। उसके बेटे की, पोते को और परपोते को भी। इसलिए मैंने कहा कि यह जो अछूत हैं इनकी अस्मिता प्रगति के अनुकूल है। वैसा ही स्त्री का भी है।

असली नागरिक की पहचान

ऋषियों ने भारत का गुणगान किया है लेकिन जिस भारत का गुणगान किया है वह भारत है कहाँ ? पहले अंग्रेजों को दोष देते थे लेकिन अब तो भारत आजाद है। अंग्रेजों के जमाने में जितना था आज उतना भी नहीं है। अंग्रेजों को सबने मिलकर भगाया लेकिन भारत आजाद होने के बाद अपने हाथ में राज्य आने के बाद आपस में लड़ने लगे। उसी प्रकार जैसे घर का कब्जा पाने के लिए चारों भाई मिलकर कोशिश करते हैं। कब्जा मिल जाने पर बँटवारे की मनोवृत्ति होती है। हम आज बँटवारे के युग में से जा रहे हैं इसलिए बिखराव पैदा हो गया है। उस बिखराव के कारण भारत खो रहा है। तो उस भारत को फिर से सँभालना है।

जातिवाद, सम्प्रदायवाद, भाषावाद और अन्त में क्षेत्रवाद। महाराष्ट्र में बेलगाँव का झगड़ा हो रहा है। उत्तर में चंडीगढ़ है ही। बेलगाँव करनाटक में हो या महाराष्ट्र में हो, इसका झगड़ा है। क्योंकि भाषा माता नहीं रही, रानी हो गयी और रानियों में हमेशा सौत का स्वभाव रहता है।

एक कहानी प्रचलित है। न्यायाधीश के पास दो माताएँ आयी थीं लड़के के झगड़े को लेकर। न्यायाधीश कोई फैसला नहीं कर सका, कोई निर्णय नहीं कर

सका, क्योंकि दोनों लड़के को माँ के रूप में अपने को हकदार कहती थीं। तो उसने कहा कि इस लड़के को काटकर दो टुकड़े कर दो और दोनों माताओं में बाँट दो। जो असली माँ नहीं थी, उसने कहा धर्मावतार कम-से-कम इतना कीजिये कि ऊपर का हिस्सा मुझे दीजिये ताकि मैं इसका मुँह निहार-निहार कर संतोष करूँगी। लेकिन उसकी जो वास्तविक माँ थी उसने क्या कहा? सावित बच्चा इसे ही दे दीजिये। मैं इसकी खुशहाली के बारे में सुनकर ही सुखी हो जाऊँगी। क्या इस तरह का कोई मानस हमारे देश में है।

रवि ठाकुर ने कहा था : "भगवान् तुम्हारे मन्दिर में प्रसाद लेने सब आते हैं लेकिन नैवेद्य लेकर कोई नहीं आता। चढ़ौती लेकर कोई नहीं आता।" क्या दुनिया में कोई ऐसा भी देश होगा जो प्रसाद की आकांक्षा नहीं रखेगा। नैवेद्य लेकर ही मन्दिर में आयेगा। यह प्रश्न आज तक अनुत्तरित है और इसलिए अनुत्तरित है क्योंकि यह देश किसका है, इसका जवाब हमने अभी तक नहीं दिया है।

एक कहानी छोटी-सी है। दो भाई रहते थे। एक छोटे-से नगर में। वे हवाखोरी के लिए निकले। शाम को अब कुछ शगल चाहिए, मनोरंजन का कुछ तो काम चाहिए। बड़ा भाई छोटे भाई से कहने लगा : "ये जो बड़ा मैदान पड़ा हुआ है यह तुमको मिल जाय तो तू क्या करेगा।" उसने कहा : "यहाँ फुलवारी लगाऊँगा, सुन्दर पार्क लगाऊँगा, गाँव के लोग घूमने आया करेंगे हवा खाने।"

बड़ा भाई बोला : "तू तो कुछ शौकीन मालूम पड़ता है। तुझे तो विलास के अलावा कुछ सूझता ही नहीं सिवाय गुलछर्रे उड़ाने के, फुलवारी क्या लगायेगा। जब इतने लोग भूखे हैं।"

छोटे भाई ने पूछा : "आप क्या करेंगे यदि आपको मिल जाय तो?"

बड़ा भाई बोला : "मैं गेहूँ बोऊँगा।"

वह बोला : "अगर मैं शौकीन हूँ तो आप निखट्टू हैं।"

यह कैसी बात कह रहे हो कि खाने के सिवाय आपको कोई दूसरी बात ही नहीं सूझती।

तो दोनों में चख-चख शुरू हो गयी।

बड़े भाई ने कहा : "तेरे बाप ने भी लगायी थी कभी फुलवारी?" अब बाप तो दोनों का एक ही था।

छोटा भाई बोला : "तेरे दादा ने भी कभी गेहूँ लगाये थे?"

अब यह पार्लियामेन्ट्री भाषा शुरू हो गयी दोनों में। चख-चख से हाथापाई

शुरू हो गयी। दोनों के हाथ में छड़ी थी, चल गयी। दोनों गिर पड़े। गाँव का एक सयाना आदमी जा रहा था। पूछा : "माजरा क्या है ?"

कुछ नहीं जमीन को लेकर झगड़ा हो गया था।

तुम कौन हो ?

हम सगे भाई हैं।

खैर कोई बात नहीं। सगे भाइयों में तो जमीन को लेकर झगड़ा हो ही जाता है। जमीन का झगड़ा कोई मौसेरे और ममेरे भाइयों में तो होगा नहीं, सगे भाइयों में ही होगा। सम्पत्ति का झगड़ा, यह कोई बेजा बात नहीं है। शरमाने की जरूरत भी नहीं है।

लेकिन यह तो बताओ : "यह जमीन किसकी है ?"

इसका तो होश ही नहीं था। यह तो सोचा ही नहीं। हम तो पंचवार्षिक और दसवार्षिक योजना ही बनाने में लग गये। लेकिन यह तो सोचा ही नहीं कि यह जमीन किसको है। अब तक नहीं सोचा है।

नेशनल इन्टीग्रेशन की कमेटी बनती चली जा रही है लेकिन अभी तक किसी ने यह नहीं सोचा है कि जमीन किसकी है ?

गोदावरी का पानी कौन पिये ?

नर्मदा का पानी कौन पिये ?

कृष्णा का कौन पिये ?

झगड़ा यहाँ तक चला गया है।

विश्व मानव

अब प्रश्न यह है कि जिस नागरिक के अधिकार के लिए झगड़ा है वह कौन है ? वह इसको समझता है क्या ?

मित्रो ! मैं सच-सच कहना चाहता हूँ कि उसको इस झगड़े की जानकारी भी नहीं है। उसको तो नारा लगाकर बहकाया जा रहा है। इसलिए इस नागरिक विश्वविद्यालय का सबसे बड़ा काम है उस सोये हुए नागरिक को यह होश दिलाना कि उसके नाम का दुरुपयोग किया जा रहा है। निहित स्वार्थ, जाति, प्रदेश, भाषा तथा देश-विदेश का नारा लगाकर बहकानेवाले आम आदमी की वास्तविक नागरिकता को खंडित कर रहे हैं।

मैं इस सन्दर्भ में इस देश के विद्वानों से इतनी ही दरख्वास्त करना चाहता हूँ कि और जो कुछ होना है सो हो, लेकिन अगली पीढ़ी में भारतीय नागरिक पैदा हो। उसके लिए क्या करना है ? वह मैं कह सकता हूँ, लेकिन आप खोजिये, खोज का विषय है। ये जितनी विविधतायें हैं, ये परस्पराभिमुख हो जायँ।

अभी जो संगीत हुआ था उसमें तम्बूरा और उन लड़कियों की आवाज दोनों में संवाद स्थापित हो गया था। इस देश की सारी विविधतायें संवादी बन जायँ इसकी खोज कीजिये और यह शिक्षण दीजिये, यह नागरिक शिक्षण है। विश्व का शिक्षण है। विद्यालय से बाहर जो विश्व है, उसका यह शिक्षण है। विद्यालय में भी है और बाहर भी है।

नागरिक को यह होश दिलाइये कि कन्याकुमारी और लद्दाख, सौराष्ट्र और नागालैंड के मनुष्य अगर एक-दूसरे को चाहने लगें तो बिना प्रयास के विश्वमानव पैदा हो जायगा। अपने आप ही अखिल भारतीय मानव विश्व मानव का जनक होगा। इतना यह विशाल देश है। इतनी विविधतायें इस देश में हैं कि यहाँ अगर एक-दूसरे से प्रेम हो जाता है। लद्दाख की जमीन नहीं मनुष्य। लद्दाख का मनुष्य और कन्याकुमारी का मनुष्य एक साथ बढ़ते हैं, एक दूसरे को चाहते हैं यह होने लगे, मनुष्य जहाँ मनुष्य से प्रेम करने लगे वहाँ संस्कृति होती है। वहाँ पर नैतिकता होती है, वहीं पर धर्म होता है। मनुष्य मनुष्य से जहाँ प्रेमपूर्वक मिलता है वहाँ ईश्वर होता है। उसे देखने के लिए भगवान आता है। भगवान को प्रसन्न करने के लिए एक ही सबसे बड़ा साधन है कि दूसरों को अपनायें। दूसरे के साथ आलिंगन हो। मैं का तू के साथ। मनुष्य का पशु के साथ। पशु पक्षी सबका वनस्पति के साथ और सबका सृष्टि के साथ। यह जो संवाद होता है इस संवाद से ही जीवन इन्टीग्रेटेड होता है। संवादी जीवन पैदा होता है। यही नागरिक का जीवन है और यही है नागरिक विश्वविद्यालय।

जब मैं पढ़ता था तो हमारा एक भूगोल का शिक्षक था बंगाली। वह हमको समझाने की बड़ी युक्तियाँ निकाला करता था। चतुर था, केवल बुद्धिमान् नहीं था। उसने भूगोल सिखाने के लिए क्या किया ? यह जो गत्ते होते हैं उसके टुकड़े किये बहुत-से। फिर इन टुकड़ों पर दुनिया के नक्शे का एक-एक हिस्सा बनाया। वह टुकड़े सब जोड़ देता था तो दुनिया बन जाती थी। हमको दिखाता था कहता था :

देखो मैंने ये सारे टुकड़े जोड़ दिये हैं। गौर से, ध्यान से देखो दोबारा तुमको बनाना पड़ेगा।

हम लोग देखते थे, लेकिन इतना ध्यान तो हमने कभी नहीं दिया जितना उसके लिए देना जरूरी था।

वह उन टुकड़ों को फेंक देता था ताश के पत्तों की तरह और हमको कहता था इनको जोड़ो। अब कहाँ, कैसे याद रहे। नक्शा उलटा-सीधा जुड़ता था। कोई ठीक से नहीं जोड़ पाता था।

एक लड़का होशियार था। अब उसे आप कुछ भी नाम दीजिये। वह लड़का होशियार था। उसने उस गत्ते के एक टुकड़े को पलटकर देखा कि टुकड़े पर मनुष्य की आकृति का एक अवयव बना हुआ है। वह ताड़ गया कि इन गत्ते के टुकड़ों पर एक तरफ मनुष्य की आकृति है और दूसरी तरफ दुनिया का नक्शा है।

उसने गत्ते के सारे टुकड़े पलट दिये। मनुष्य को जमाना शुरू कर दिया। इधर मनुष्य जम गया, उधर दुनिया जम गयी। ●

नागरिक विश्वविद्यालय की रूपरेखा

क्षेत्र और शिक्षण-पद्धति

अब यह जो नागरिक विश्वविद्यालय शुरू हो रहा है उसकी चहारदीवारी क्षितिज होगा, तो यह विश्वविद्यालय होगा। जहाँ चहारदीवारी आ जाती है वहाँ विश्व नहीं रहता। इसलिए नागरिक विश्वविद्यालय का क्षेत्र क्षितिज तक होगा यानी असीम। नागरिक विश्वविद्यालय की शिक्षण-पद्धति विनिमय की होगी। एक सीखनेवाला और दूसरा सिखानेवाला यह भेद नहीं होगा, न ही होना चाहिए। अभी इसका आरम्भ काल है। प्रथम प्रयास को बीज के दानों के समान समझना चाहिए। यह तो मिट्टी में छिप जायगा, लेकिन इसके बाद इसमें से अंकुर ही अंकुर निकलेंगे।

नागरिक विश्वविद्यालय का क्षेत्र हो गया क्षितिज तक और शिक्षण-पद्धति हो गयी विनिमय की। अब तीसरा सवाल है कि ज्ञान से आदान-प्रदान का आधार क्या होगा? इसको समझने के लिए एक घटना का जिक्र कर रहा हूँ। उसमें से आधार मिलेगा।

एक जगह मुझे भाषण के लिए बुलाया गया था, देश में आतिथ्यभाव है ही। मैं चाय पीता हूँ इसका आतिथेय को पता था।

उसने कहा : "चाय पी लीजिये। उसके बाद सभा में जायेंगे।"

मैंने कहा : "बनवा लीजिये, देर नहीं करनी चाहिए।"

उसने कहा : "मैं तुरन्त बनवा लेता, लेकिन गाय दुहनेवाला ग्वाला अभी आया नहीं है।"

"गाय आप दुह लीजिये।"

"मुझे वह इल्म नहीं आता है।"

मैंने कहा : "मैं आपकी गाय दुह देता हूँ।"

"आप मेरी गाय बिगाड़ देंगे, क्योंकि आप भाषण करना तो जानते हैं, गाय दुहना तो जानते नहीं।"

"बात तो आपने पते की कही। जीवन में जो सबसे आवश्यक वस्तु है वह मैं नहीं जानता हूँ। और दूसरी ऐसी बहुत-सी वस्तु जानता हूं जिनका जीवन में कोई उपयोग नहीं है।"

समाज में अनेक ऐसे नागरिक हैं, जो जीवन की कई विद्याएँ जानते हैं, जिन्हें हम नहीं जानते। लेकिन आज के समाज में वे सारी विद्याएँ बाजार में बैठी हैं, बाजार में और दरबार में।

विनाश्रये न शोभन्ते पण्डिता, वनिता, लता।

सारे विद्यावान् पुरुष लता की तरह बन गये हैं। बिना आश्रय के ये खड़े नहीं रह सकते। इनको आश्रय चाहिए।

मैं मालविकाग्निमित्र की बात कह रहा हूँ। नृत्य सिखाने के लिए एक नृत्य-विशारद को बुलाया गया। उससे पूछा : नृत्य सिखाने का शुल्क क्या होगा ?

यस्यागमः केवलं जीविकायै

तं ज्ञानपण्यं वणिजं वदन्ति।

जीविका के लिए जिसका ज्ञान है उस ज्ञान के दूकानदार को बनिया कहते हैं। लेकिन आज तो सभी विद्याएँ बाजार में बिकने आ गयी हैं। आचार्य लोग अपनी विद्याओं का पिटारा लेकर बाजार में सौदा कर रहे हैं।

सौदे का स्वरूप क्या है ? कम-से-कम दे और अधिक-से-अधिक ले, यह सौदा है। मेरे घर के लोग मुझे बाजार में नहीं भेजते थे, क्योंकि मैं सौदे में हमेशा

घाटे में हो रहता था। एक दिन तो एक रुपये की मिठाई लाया तो मेरे दादा ने कहा कि यह तो तू चार आने के बराबर लाया है। फौरन दूसरे लड़के को भेजा। वह एक रुपये की मिठाई चार आने में ले आया और चवन्नी भी खोटी देकर आया। वह सौदे में होशियार साबित हुआ और मैं सौदे में बेवकूफ साबित हुआ। इसे प्रतिमूल्य का अर्थशास्त्र कहते हैं। जिस सन्दर्भ में आज हम जी रहे हैं हमारा धर्म, हमारी विद्या, हमारी कला ये सबके सब प्रतिमूल्य के अर्थशास्त्र में दब गये हैं।

मित्रो! ज्ञान के आदान-प्रदान का यह आधार नागरिक विश्वविद्यालय में नहीं चलेगा। **आचार्य इस आधार को नहीं बदल सकेंगे, लेकिन इसको बदलने की जरूरत लोगों को बतला सकेंगे और खुद उसमें शामिल हो सकेंगे। आचार्य अगर ठीकेदार हो जायेंगे इस हालत को बदलने के, तो वे समाज के मालिक बन जायेंगे। इसलिए पहला नियम तो यह है कि विचार दें नहीं, विचार करना सिखायें। बने-बनाये विचार न दें।**

बने-बनाये विचार शास्त्र का रूप ले लेते हैं। परिस्थिति के सन्दर्भ में विचार-चिन्तन से ज्ञान मिलता है। शास्त्र और ज्ञान अलग-अलग चीजें हैं। ज्ञान में मौलिकता होती है। शास्त्र में विद्वत्ता होती है। शास्त्री बहुश्रुत होता है। विद्वान् चिन्तन करता है। इस प्रसंग में हम लोगों में यदि किसीका नाम लेना हो तो हम धीरेन्द्र मजूमदार का नाम ले सकते हैं। वे अशिक्षित थे, लेकिन उनमें एक मौलिकता थी।

एक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अर्थशास्त्री मेरे मित्र थे। मैं गांधी की बात उनसे कहने लगा। उन्होंने कहा कि तुम्हारे गांधी में एक बात है कि वह अन्ट्रेन्ड माइंड है—अप्रशिक्षित व्यक्ति है। मैंने कहा, इसीलिए उसमें मौलिकता है, नहीं तो उसमें विद्या ही नहीं रहती।

तो यह पहला मन्त्र है मित्रो, ज्ञान-विनिमय के द्वारा समाज-परिवर्तन का। चाहे शिक्षण का क्षेत्र हो, चाहे और किसी क्षेत्र में हो, विचार देंगे नहीं, विचार करने की प्रवृत्ति पैदा करेंगे। **परस्परं बोधयन्तः**। वे हमारा उद्बोधन करेंगे हम उनका उद्बोधन करेंगे। परस्पर बोध तो शिक्षण-पद्धति हुई। अब दूसरा प्रश्न है कि इसका कार्यान्वयन कैसे होगा? इसकी प्रक्रिया शुरू कैसे होगी?

शिक्षण प्रक्रिया

विज्ञान का युग जिज्ञासा का युग है, आविष्कार का युग है। जिज्ञासा मनुष्य का प्रधान लक्षण है। समाज में बहुत-सी ऐसी अशिक्षित प्रतिभाएँ हैं, जिनके पास जाने से, जिज्ञासा करने से परस्पर ज्ञान-वृद्धि होगी।

जिज्ञासा यानी क्या ? इन्टरोगेशन, इन्क्वायरी, हम एक-दूसरे के साथ इसको लेकर जायँ तो उनमें जो प्रज्ञा है वह जाग्रत होगी। सुप्त प्रज्ञा को जाग्रत करना आसान काम नहीं है। इसमें कुछ बाधाएँ हैं, मुख्य रूप से मुसलमान, मजदूर और महिलाओं के सन्दर्भ में। तो मित्रो, इनकी प्रज्ञा को जगाने में जो प्रत्यवाय, बाधाएँ हैं उनको समझने के बाद ही शिक्षण-प्रक्रिया प्रारम्भ हो सकेगी।

मुसलमानों के साथ पहला प्रत्यवाय (बाधा) तो तब आया, जब धर्म के साथ उन्होंने भाषा जोड़ दी। असल में कहीं भी वह जुड़ी हुई नहीं है। सारे इस्लामिक राष्ट्रों की कोई एक भाषा नहीं है। और अब तो बंगला देश हो गया। भाषा की ही समस्या को लेकर पाकिस्तान बँट गया। दो सम्प्रदाय इस विषय में दोषी रहे हैं। एक इस्लाम और दूसरा सिख। दोनों ने धर्म के साथ भाषा को जोड़ा। बहुत बड़ी मर्यादा आ गयी, भाषा को ही नहीं, अब तो लिपि को भी धर्म के साथ जोड़ दिया गया है।

दूसरा कारण यह हुआ कि परम्परा को एकदम इन्कार कर दिया गया। भारत में जो जन्मे उन्होंने भारत में हुए महापुरुषों को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नानक आदि की परम्परा को ही नहीं, इन पूर्वजों को भी इस धर्म में नहीं माना गया। इसलिए एक-दूसरे के साथ समरस नहीं हो सके, इससे एक मर्यादा आ गयी।

विनोबा ने सब धर्मों का अभ्यास किया है। वे हमारे परम पूज्य प्रधानाचार्य हैं। कुरान का श्रद्धापूर्वक अध्ययन करके उसका उन्होंने जो सार पेश किया उसको मौलवियों ने, मौलानाओं ने तथा आजाद साहब ने देखा। उन सबने यह माना कि यही कुरान का असली सार है। लेकिन उसको इस्लाम को मस्जिदों में या मुसलमानों में पढ़ा नहीं जायगा। क्योंकि इसको तैयार करनेवाला एक गैर-मुस्लिम आदमी है। धर्म के मामले में अन्य धर्मियों का अस्वीकार यह है तीसरा प्रत्यवाय।

चौथी बात यह रही है कि इनका भारत देश के बाहर ध्यान रहा। एक ही सम्प्रदाय इस देश में ऐसा हुआ, जिसने सम्प्रदाय के नाम पर देश का बँटवारा कराया, विभाजन कराया। यह भावना को इतनी गहरी चोट पहुँचानेवाली वस्तु थी कि इससे ऊपर उठना साधारण नागरिक के लिए मुश्किल हो गया।

मुसलमानों को ये चारों बाधाएँ समझनी होंगी। सौभाग्य की बात है कि इस्लाम में एक ऐसी पीढ़ी पैदा हो रही है, जिसमें ये चारों दोष नहीं हैं, जो अभी मैंने आपके सामने रखे। उनमें ऐसे व्यक्ति पैदा हो रहे हैं, जिनका स्थान दिल्ली

में भी नहीं है, न उनके समाज में जिनकी कोई प्रतिष्ठा है। ऐसी जो तरुण जमात मुसलमानों की पीढ़ी पैदा हो रही है उनके साथ हम सम्पर्क करें, उनको अपनायें। इसलिए नहीं कि उनके वोट चाहिए, बल्कि इसलिए कि उनके साथ सम्पर्क किये बिना हमारा काम अपूर्ण रह जायगा। मन में यह संकल्प पक्का होना चाहिए, दृढ़ होना चाहिए कि हमें एक-दूसरे के साथ रहना है। अगर एक-दूसरे के साथ रहना है तो दो चीजें चाहिए : १. भय न हो, और २. सन्देह न हो। एक-दूसरे के विषय में सन्देह न हो, भय न हो। इनका अध्ययन करके हमें उनके पास जाना चाहिए। मैं समझता हूं कि आज यह एक बहुत बड़ी अनुकूलता पैदा हुई है। क्योंकि पाकिस्तान का जीवन उन्होंने देख लिया है। अब उनके विचार में परिवर्तन आ रहा है। उनकी सहायता हम कर सकते हैं, अवश्य करनी चाहिए, नहीं तो एक अपूर्णता आयेगी।

भारत देश की यह भूमिका है कि यह विश्व की प्रतिकृति बन सकता है। लेकिन मुसलमानों के साथ अभिमुखता नहीं हुई तो प्रतिकृति में कमी रह जायगी। इस देश में दूसरा कोई ऐसा सम्प्रदाय नहीं है, जिसने इस देश की भाषाओं से अलग किसी अन्य भाषा का समर्थन किया हो। ईसाई हैं, लेकिन ईसाई-धर्म का भाषाओं से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। योरोप में जितनी भाषाएँ हैं वे सब ईसाई धर्म की भाषाएँ हैं। हमारे देश में भी उनका काम सब भाषाओं में चलता है। उनके नाम और उपनाम भी भारत के सामाजिक ढाँचे के अनुरूप हैं। वे जो कविताएँ लिखते हैं उन कविताओं में हमारे पूर्वजों के उल्लेख आते हैं और वह आदरपूर्वक आते हैं। उपासना केवल भिन्न हो गयी है। इस प्रकार से नागरिक विश्वविद्यालय को पहले सभी धर्मों के लोगों में अभिमुखता लाने के लिए काम करना होगा।

अभिमुखता की दृष्टि

यह अभिमुखता धर्मावलम्बी के नाते नहीं होगी, मनुष्य के नाते होगी। क्योंकि एक संगठित धर्म दूसरे संगठित धर्म से कभी मिल नहीं सकता। जब धर्म संगठित होता है तो उसमें ईश्वर और नैतिकता दोनों नहीं रह सकते। एक दरवाजे से संगठन आयेगा, भगवान खिड़की में से भाग जायगा। संगठित धर्म में वह रह नहीं पायेगा—यह मैं खोज की चीज रख रहा हूँ। यह खोज आचार्यकुल के सदस्य नहीं, नागरिक और आचार्यकुल मिलकर करेंगे। उनका विश्वविद्यालय इतना विशाल होगा तब यह खोज हो सकेगी। धर्मों के साथ अभिमुखता की प्रकिया की खाज करते समय कुछ सावधानियाँ बरतनी होंगी।

एक तो धर्म की रूढ़ियों को समर्थन देकर खुशामद नहीं करनी चाहिए। इस खुशामद का एक अनुभव हम कर चुके हैं। खिलाफत-आन्दोलन जब शुरू हुआ उस समय मैं तो छोटा लड़का ही था। बापू के चरणों में निवेदन किया कि एक तरफ तो आप शंकराचार्य के मठों के मठाधीशों को नहीं मानते हैं फिर यह खलीफा कौन होता है? और आप क्यों कह रहे हैं कि खिलाफत मेरे लिए गाय के समान है।

एक बात उन्होंने समझायी, जो समाजशास्त्र का एक बड़ा सिद्धान्त है कि 'किसीके हृदय में प्रवेश करना हो तो उसके धर्म के द्वारा करो। हृदय में प्रवेश करने का द्वार धर्म है।'

लेकिन फिर वह द्वार ऐसा होना चाहिए कि उस द्वार से हम वास्तविक धर्म पर पहुँचें। यह शंकराचार्य मठ के मठाधीश और खलीफा तो धर्म है नहीं। लेकिन इतना विशाल हृदय और इतना उदात्त आशय होते हुए भी यह कहने की हमारी हिम्मत नहीं हुई कि यह गलत है। कुरान में भी बहुत-सी चीजें ऐसी हो सकती हैं। वेद के बारे में हम कहते ही हैं। भगवद्गीता के बारे में कहते हैं। ईसाइयों के बारे में हम कहते हैं, लेकिन खलीफा के बारे में हम नहीं कह सके। इसमें सत्यनिष्ठा कुछ कम हो गयी। इसमें कोई कठोरता नहीं है, कोई निन्दा नहीं है।

जिस प्रकार हमारे धर्म में कुछ बुराइयाँ हैं—जैसे अछूत और अस्पृश्यता। "छुआछूत अगर वेदों में होगी तो मैं उसे नहीं मानूँगा।" यह गांधी ने कहा।

एक मनुष्य चार स्त्रियों से शादी करे यह प्रश्न आते ही राज्य नेताओं से लेकर नीचे तक सभी एक तरह से मौन हो जाते हैं। इसके लिए दोस्ती की आवश्यकता है। जहाँ एक-दूसरे के लिए भय है या सन्देह है वहाँ इस तरह की चीजों का विरोध नहीं हो सकता।

सत्य कथन के लिए मन में प्रेम चाहिए, तभी वह सत्य कहा जा सकता है। यह केवल राजा से नहीं, सरकार से ही नहीं, लोगों से भी कह सकें। लोगों के दरबार में भी जाकर कह सकें कि आपकी यह बात गलत है। तभी धर्म-संगठनों से परे मानवीय स्तर पर अभिमुखता पैदा करने का काम कर सकते हैं।

मैं असेम्बली के लिए खड़ा हुआ तो मेरे एक चाचा सनातनी थे, जो छुआछूत को मानते थे। मैं तो छुआछूत मानता नहीं था। चाचा मेरे पूज्य थे, वे भी मुझे बहुत प्यार करते थे। लेकिन छुआछूत के मामले में उनका विरोध था। उन्होंने मुझसे कहा कि यदि तुम सचमुच लोकमत जानना चाहते हो तो इस आधार पर चुनाव लड़ो कि अस्पृश्यता चाहिए या नहीं।

मैंने कहा ठीक है। हम इस आधार पर चुनाव लड़ेंगे, लेकिन आप इसको जिस रूप में रखना चाहते हैं मैं उस रूप में नहीं, दूसरे रूप में रखूंगा।

उन्होंने पूछा किस रूप में रखोगे ?

मैंने कहा कि इस रूप में रखूंगा—लोगों से पूछूंगा कि तुमसे जो ऊपर हैं उनके साथ बराबरी पर जाना चाहते हो या नहीं। यह वास्तविक लोकमत है।

सवर्णों का बहुमत है तो वे कह सकते हैं कि अस्पृश्यता चाहिए—लेकिन सवर्णों में जो एक-दूसरे से नीचे हैं उनसे पूछिये कि वे अपने से ऊपरवाले के साथ बैठना चाहते हैं या नहीं। यह वास्तविक लोकमत हुआ। इसको क्रान्ति का दर्शन कहते हैं।

रामायण में आता है--**कौशल्या शुभदर्शना**--उस पर भाष्य किया है कि वह कौशल्या, जो देखने में सुन्दर थी--शुभदर्शना।

मैंने अपने चाचा से कहा कि यह नहीं हो सकता।

उन्होंने पूछा, तो क्या होगा ?

मैंने कहा कि यह इस प्रकार होगा कि वह कौशल्या जो शुभ देखती थी। नहीं तो कौन-सी विशेषता थी कौशल्या में जो वाल्मीकिजी उसका वर्णन करते।

एक कहता है कि दो रातों के बीच में दिन दुबककर बैठा है।

दूसरा कहता है कि दो दिनों के बीच में रात दुबककर बैठी है।

सत्य को देखने की भी एक दृष्टि होती है, आउटलुक होता है, भूमिका होती है। आचार्य की दृष्टि भी महत्त्वपूर्ण है। वह सत्य को परिवर्तन के उस पहलू से देखेगा जो क्रान्ति के लिए प्रेरणा दे सके। इसीमें से सच्ची अभिमुखता पैदा हो सकती है।

स्त्री-पुरुष-सहयोग

जैसे मुसलमानों का है वैसे ही स्त्रियों का भी है। ये जो स्त्रियाँ हैं उनको हमने सम्पूर्ण मानव कभी नहीं माना और दुर्भाग्य यह है कि उन्होंने भी अपने को सम्पूर्ण मानव नहीं माना, वे अर्धांगिनी हैं। मैं अपनी माँ, अपनी पत्नी, अपनी बेटियों और अपनी पोतियों इन सबके साथ रहने के बाद इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि स्त्रियाँ स्वतंत्रता से डरती हैं।

वह संरक्षित स्वतंत्रता चाहती हैं।

संरक्षित स्वतंत्रता कभी स्वतन्त्रता हो ही नहीं सकती।

अब इसमें विरोध कहाँ है ?

डर किससे है ?

पुरुष से ।

संरक्षण किसका चाहिए ?

पुरुष का ।

यह तो वैसा ही हुआ कि बकरी शेर से डरती भी है और शेर के द्वारा ही संरक्षण भी चाहती है ।

यह क्यों होता है ? क्योंकि स्त्री के विषय में सारा चिन्तन काम-वासना को केन्द्र में रखकर किया गया है ।

पुरुष के लिए ब्रह्मचर्य और स्त्री के लिए पतिव्रता-धर्म अर्थात् पुरुष स्त्री की अवहेलना करे और स्त्री पुरुष के बिना पतित । यह कैसी व्यवस्था है ?

मैं मानता हूँ कि स्त्री के सान्निध्य के बिना पुरुष अपूर्ण है और पुरुष के सान्निध्य के बिना स्त्री पूर्ण नहीं हो सकती । इसीको मैं ब्रह्मचर्य मानता हूँ, क्योंकि जहाँ एक-दूसरे का त्याग करना पड़ता है वहाँ ब्रह्मचर्य है ही नहीं । ऐसे तो जो जेलों में रहते हैं वे सारे ब्रह्मचारी हैं ।

विनोबा के आश्रय में काकाजी हैं, ९० साल के हैं, पुराना संस्कार है, अविवाहित हैं, ९० साल के पैर तो लड़खड़ाते हैं । अब जैसे मुझे हाथ पकड़कर ले जाते हैं । पवनार में ब्रह्मविद्या मन्दिर की कन्याएँ दौड़कर जाती हैं उनको सँभालने के लिए । लेकिन वे उनको छूने नहीं देते । ब्रह्मचारी रहे हैं । विनोबा ने कहा, यह भूल जाता है कि यह भी स्त्री की कोख से ही पैदा हुआ है । मैंने कहा, यह भूल नहीं जाता है वह इसकी विवशता थी । लेकिन इस भावना में स्त्री के प्रति जो दूरीभाव का संकेत है, उसे समझना चाहिए ।

लक्ष्मण ने कहा कि मैंने जानकी के केयूर और कुंडल नहीं देखे । **नित्यं पादाभिदर्शनात्**—चरण ही देखता रहा हूँ ।

मेरे खयाल में आया कि अगर वह जानकी को माता समझता था तो क्या अपनी माँ सुमित्रा का भी मुँह उसने नहीं देखा होगा ? सुमित्रा का भी मुख देखना वर्जित किया होगा उसने ? यह स्त्री के प्रति दुराव का ही भाव है । अभिमुखता पैदा करने के लिए इस भाव को छोड़ना होगा ।

इसको दूर करने के लिए यदि अगला कदम स्त्री और पुरुष नहीं उठायेंगे तो भयानक स्थिति पैदा होनेवाली है । बलात्कार में स्त्री संरक्षण भी पुरुष से चाहती

है और बलात्कार करनेवाला भी पुरुष है। इसको रोकना हो तो दोनों के सहयोग के बिना अब यह चीज आगे रुकनेवाली नहीं है।

मैं कहा करता हूँ कि युनिवर्सल कलेक्टिव नहीं, फेमिली आफ मैन--विश्व-कुटुम्ब की तरफ हमें जाना है, जागतिक संस्थावाद की तरफ नहीं। कुटुम्ब में स्त्री-पुरुष साथ-साथ रहते हैं, निर्भयता के साथ रहते हैं। जवान लड़का, जवान लड़की, भाई-बहन हैं इसलिए रहते हैं। इन कौटुम्बिक रिश्तों को, नातों को हमें सामाजिक मूल्य बनाना होगा। इसमें यह मुट्ठीभर आचार्य पूरा काम नहीं कर सकेंगे। इसमें तो सारे स्त्री-पुरुषों का सहयोग आवश्यक है। तो, को-एजुकेशन भी है इस नागरिक विश्वविद्यालय में, क्योंकि कुटुम्ब है। दोनों साथ-साथ रहेंगे।

श्रम का गौरव

एक और चीज है। जो मैं कहा करता हूँ कि श्रम का सम्बन्ध रोटी के साथ नहीं होना चाहिए। काम का संबंध दाम के साथ न हो--आज भी नहीं है, लेकिन ऐसी मान्यता है। इस मान्यता को समाप्त करना होगा।

मैं होशंगाबाद में था। रोज हम लोग तैरकर नर्मदाजी को पार करते थे। एक दफा थक गया तो डूबने लगा। एक मल्लाह ने मुझे बचाया। लेकिन मध्य धारा में मेरी धोती खुल गयी। अब डर पिताजी का था, इसलिए कुछ दिनों उनसे कहा नहीं। एक ही धोती रह गयी थी। उसीको बार-बार पहनता रहा। दुर्भाग्यवश एक दिन वह मल्लाह नर्मदा में मेरी जो धोती बह गयी थी उसे लेकर मेरे घर आया। मेरे पिता से उसने कहा, "यह आपके बेटे की धोती है। वह नर्मदाजी में डूब रहा था, मैं किनारे पर खड़ा था। नदी में कूद कर मैंने इसे बचाया। उसके आने के बाद मुझे यह धोती मिली। फुरसत न होने से आपको देने नहीं आया था। अब आया हूं, अतः रख लीजिये।"

पिताजी ने उसको पचीस रुपये दिये। मल्लाह ने सवाल किया : "यह पचीस रुपये आपके बेटे की जान का कीमत है या मेरी जान की कीमत है ?"

किसी काम की कीमत नहीं हो सकती है मित्रो, यह सारा अर्थशास्त्र मायावी है। मुझे आज भी उस आदमी की बात याद है। यह बात मुझे इतनी लगी कि आज भी याद है।

उसने ऐसे पते की बात कही, जो शिक्षित मनुष्य कह ही नहीं सकता था।

उसने रुपये लेने से इन्कार कर दिया और कहा : "मैंने तो इसको इसलिए बचाया कि जब यह डूब रहा था, किनारे पर बैठकर मुझसे रहा नहीं गया। मैं

क्या जानता था कि जो डूब रहा है वह आपका बेटा है। लोगों ने कहा, आपका बेटा है तब जाना। धोती रह गयी थी वह देने आया हूँ। कुछ माँगने नहीं आया हूँ।"

इसी प्रकार जो दरबान है, हमारे घर पर हमारी तिजोरी को बचाता है, उसकी जान खतरे में होती है। तो उसको जो वेतन दिया जाता है तो क्या वह उसकी जान की कीमत है? हर सिपाही प्रतिक्षण मृत्यु का सामना करता है। क्या उसकी जान की कीमत दी जाती है उसे तनख्वाह के रूप में?

श्रम की कोई कीमत हो सकती है? बहुत बड़ा भ्रम इस अर्थशास्त्र ने फैला दिया है।

मार्क्स ने कहा था कि यह अर्थशास्त्र (ह्यू मन मिजरी) मानवता का अभिशाप है, विपत्ति-शास्त्र है, सम्पत्ति-शास्त्र नहीं है। इन आचार्यों को समझ लेना चाहिए कि यह जो अर्थशास्त्र है वह न सम्पत्ति-शास्त्र है न विपत्ति-शास्त्र है। दरअसल यह अर्थशास्त्र है ही नहीं।

नागरिक विश्वविद्यालय मूल्यों को बदलनेवाला विश्वविद्यालय होगा। मूल्य की जगह आज कीमत है। कीमत की जगह मूल्य आना चाहिए। आज प्राइज है इसकी जगह वैल्यू आना चाहिए। यह आम लोगों को समझाया जाना चाहिए। श्रम की कीमत हो नहीं सकती। इसका मतलब यह नहीं है कि मुफ्तखोर होंगे।

एक कम्युनिस्ट ने मेरा पूरा भाषण पढ़े बिना ही मेरे बारे में लेख लिख दिया। उसने लिख दिया कि यह दादा धर्माधिकारी कहता है कि सबको मुफ्त में खाना मिलना चाहिए।

मैं कहता हूं, "मुफ्त में खाना नहीं मिलना चाहिए। बल्कि जिसको भूख है उसको मिलना चाहिए। तो भूख क्या मुफ्त है?"

समाज में एक नियम हो कि "श्रम सब करेंगे। श्रम का गौरव हो।"

श्रम कितना करेंगे? जितना कर सकेंगे उतना करेंगे। जैसे माँ करती है, पिता करता है।

पिता जब अपने बच्चे को पढ़ाता है तो फीस का खयाल नहीं करता। जितना पढ़ा सकता है उतना पढ़ाता है। और भोजन करता है तो जितनी आवश्यकता है उतना भोजन करता है।

भोजन भूखे को मिलेगा, लेकिन समाज में कोई बगैर परिश्रम के नहीं रहेगा।

ये ऐसे मूल्य हैं, जो समाज में स्थापित होने चाहिए, हर समाज में होने चाहिए। श्रम का गौरव, श्रम की प्रतिष्ठा होगी तो समाज समृद्धिशाली होगा।

आत्म-विसर्जन का संकल्प

एक और बात कही जाती है कि २० प्रतिशत लोग ८० प्रतिशत लोगों का शोषण करते हैं।

बिलकुल बात सही है, लेकिन इस बात को कहनेवाले भी २० प्रतिशत में से ही हैं :

जिन्होंने आवाज उठायी वे भी २० प्रतिशत में से ही हैं।

मार्क्स २० प्रतिशत में से था।

एंजेल्स भी २० प्रतिशत में से ही था।

गुलामी के खिलाफ जिसने आवाज उठायी वह स्त्री हैरियस्टोव २० प्रतिशत में से ही थी।

इस तरह मजदूरों के शोषण या स्त्रियों के शोषण के खिलाफ आवाज उठानेवाले तथा अस्पृश्य या हरिजनों के सवालों को उठानेवाले इस बीस प्रतिशत में से ही थे।

तो २० प्रतिशतवाले आत्म-विसर्जन का संकल्प करें।

गया जी में एक आत्मपिंड और आत्मश्राद्ध होता है। कहते हैं, तुम्हारा बेटा तो श्राद्ध नहीं करेगा। तो वे कह देते हैं ठीक है, हम अपना श्राद्ध स्वयं ही कर लेंगे। यह चीज मुझे बड़ी अच्छी मालूम हुई कि आत्मश्राद्ध भी किया जा सकता है। तो ये जो २० प्रतिशत हैं उनको आत्मश्राद्ध करना है। यह प्रायश्चित वगैरह कुछ नहीं है। यही मानव के विकास का रास्ता है। जो अमीर हैं वे भी आत्म-विसर्जन का संकल्प करें और ये जो ऐलीट हैं, बुद्धिवादी हैं, ये भी आत्म-विसर्जन का संकल्प करें--तब लोकतंत्र चरितार्थ होगा।

लोकतंत्र के साथ जोड़ते हैं विकेन्द्रीकरण को, लेकिन यह विकेन्द्रीकरण और समविभाग दो अलग-अलग चीजें हैं। विकेन्द्रीकरण एक चीज को बिखेर देता है। उसमें से समविभाग नहीं निकलता।

विनोबा बड़े मजे की बात कहते हैं कि मिश्री के भी टुकड़े हो सकते हैं और पत्थर के भी टुकड़े हो सकते हैं। इन छोटे-छोटे टुकड़ों में मिश्री और पत्थर के गुण पूरी तरह मौजूद रहेंगे। इसी प्रकार अगर राज्य के छोटे-छोटे टुकड़े हो जायँ

तो वह राज्य ही रहेगा। उसमें गुणात्मक परिवर्तन नहीं होगा। इसलिए यह विकेन्द्रीकरण वगैरह बेकार है। उससे न लोकतंत्र बनेगा, न समविभाग होगा। टुकड़ा चाहे छोटा हो या बड़ा हो, उसके गुण-धर्म नहीं बदलते।

एक दामाद का किस्सा है। वह पहुँचा अपने ससुराल। वहाँ एक चिट्ठी आयी तो रोने लगा। सब उसको देखकर रोने लगे। आखिर में एक आदमी उसके पास गया चुपके से। पूछा, क्या बात है? उसने कहा कि मैं अंग्रेजी में सिर्फ बड़ी बारहखड़ी पढ़ना जानता हूँ। यह छोटी बारहखड़ी में लिखा है। उस बेचारे को छोटी और बड़ी बारहखड़ी का फर्क ही परेशान किये था। तो मित्रो, एक ही धातु से छोटे-बड़े सिक्के बनाये जा सकते हैं। उससे उस धातु के गुण-धर्म में फर्क नहीं आता तो समविभाग के लिए विकेन्द्रीकरण हो या वर्ग-संघर्ष, इसका वहस विद्वान् करेंगे, परन्तु वरावरी का समाज बनाने के लिए मुख्य चीज है मनुष्य मनुष्य के नजदीक आये। बड़े को छोटे टुकड़ों में बाँटने से बरावरी स्थापित नहीं होगी।

उत्पादन की प्रक्रिया, उत्पादन के साधन और उत्पादन की पद्धति ऐसी हो कि मनुष्य एक-दूसरे के निकट आयें। यह पकड़ की बात है। वर्ग-संघर्ष होगा या नहीं ये सब चर्चाएँ विद्वानों के मनोरंजन की चीज है। इनमें कोई दम नहीं है। वर्ग-संघर्ष हो या न हो, सबसे वड़ी बात यह है कि जिस पद्धति से दोनों पक्ष नजदीक आयेंगे वर्तमान मूल्यों को बदलने के लिए, वह पद्धति क्रान्तिकारी होगी। जिस पद्धति में एक पक्ष का नाश होगा वह पद्धति क्रान्तिकारी नहीं हो सकती, क्योंकि इस प्रक्रिया को मान्य करने पर नाश करने की कुशलता जिसकी अधिक होगी वही जियेगा तब। तो हम वर्ग-संघर्षवाले हैं, वर्ग-समन्वयवाले नहीं हैं इसके बजाय हमें कहना चाहिए कि मैं कोईवाला नहीं हूँ। मैं चाहता हूँ कि मनुष्य और मनुष्य के बीच जो अन्तर आये हैं, जो व्यवधान आये हैं, उनको मिटाना चाहिए वह जिस पद्धति से मिटेगा उस पद्धति का मैं कायल हूँ। मैं किसी पद्धति का गुलाम नही हूँ।

एक बात और है कि आचार्य निष्पक्ष होगा। निष्पक्ष का अर्थ यह है कि जो दलित है, पीड़ित है, जो पिछड़ा हुआ है वह उसका अभिभावक होगा, उसका हिमायती होगा--उसका पक्षपाती होगा। जब पीड़ित न्याय की माँग करेगा तो आचार्य कहेगा कि न्याय उसके पक्ष में होना चाहिए, जो कुचला गया है, दवाया गया है। क्योंकि उसका ऊपर आना, आगे आना ही तो न्याय है। अतः हम उसका पक्ष लेंगे। यही हमारी निष्पक्षता की कसौटी है।

शेक्सपीयर ने कहा था, जस्टिस टेम्पर्ड विद मर्सी--न्याय में दया का अनुपान

मिलाइये। हम दया का अनुपान नहीं कहते हैं बन्धुत्व का अनुपान कहते हैं, क्योंकि दया में पारस्परिकता नहीं है। तो मित्रो, दया में भी पारस्परिकता नहीं है और समान बँटवारे में भी नहीं है। बँटवारा माने क्या—इसको समझना होगा।

जेल में सबको समान बँटवारा होता था। सबको छः-छः रोटी मिलती थी। जो छः खाये उसको भी छः, जो बारह खानेवाला है उसको भी छः। जो कम खाये उसकी भी पेशी हो, जो ज्यादा खाये उसकी भी पेशी हो। सबको, बराबर-बराबर।

घर में माँ ने बनाये लड्डू। तो उतने में कोई दोस्त आ गये। कहा, तुम भी बैठ जाओ। सब चटखारे ले-लेकर खाने लगे। आखिर में माँ के लिए एक भी नहीं बचा।

तो वह माँ पड़ोसिन से कहती है कि सुनती हो, आज लड्डू बने थे। हमारे लिए एक भी नहीं बचा। प्रसन्न हो रही है। छोटा बच्चा पूरा लड्डू माँग रहा है तो उसे पूरा लड्डू ही मिलता है। वह लड्डू पूरा भी है और छोटा भी है। गोल भी है और आकार में कम भी है।

तो यह विकेन्द्रीकरण जो होना चाहिए उसमें लड्डू के टुकड़े नहीं चाहिए। सभी गोल चाहिए। छोटे-बड़े हो सकते हैं, लेकिन वे एक बड़े लड्डू के टुकड़े नहीं होने चाहिए। बँटवारे से पारस्परिकता नहीं बनती, उसे बनाने के लिए माता की वृत्ति, युक्ति और भूमिका, तीनों चाहिए।

भूमिका का महत्त्व

हम जो पारस्परिकता की बात कहते हैं उसका मुख्य कारण यह है कि उसमें हरएक की भूमिका पूर्णता की रहती है। व्यक्ति भी सम्पूर्ण, ग्राम भी सम्पूर्ण और फिर इसलिए समाज भी सम्पूर्ण। यही समानता की प्रक्रिया है। इसको हम लोगों में फैलाना चाहते हैं। सभी नागरिकों को इस सारे चिन्तन में और शोध में शामिल करना चाहते हैं। हम उनको इस विचार के अनुयायी नहीं बनाना चाहते हैं। सहभागी बनाना चाहते हैं।

नागरिक विश्वविद्यालय के नाम से कोई अलग संस्था खड़ी नहीं करनी है।

चिन्तन के स्तर पर सब को शामिल करने की प्रक्रिया का नाम ही नागरिक विश्वविद्यालय है। चिन्तन और आचरण में भेद होता है। कई लोगों का मानना है कि आचरण के बिना चिन्तन निरुपयोगी है। आचरण अवश्य चाहिए, लेकिन

उसमें चिन्तन और प्रयोग का अनुपान आवश्यक है। वरना आचरण ढोंग हो जायगा।

मित्रो ! मैं तो कुछ कर ही नहीं रहा हूँ। साठ साल से मेरे पास शब्द ही शब्द हैं, बातों का ही जमा-खर्च है। मेरी यह श्रद्धा है कि शब्द में अपनी शक्ति होती है। शब्द ही तो आचरण की प्रेरणा है। आप जानते हैं कि वेद के ऋषियों ने कौन-सा आचरण किया था। आपने कभी कालिदास के आचरण को देखा ? कोई जानता है शेक्सपीयर क्या करता था ?

जिसका शब्द उसके जीवन तक ही सीमित है वह क्रान्ति नहीं कर सकता।

जीवन की अपेक्षा शब्द व्यापक होगा, तभी मनुष्य की प्रगति होगी। फिर क्या आचरण का शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं है ? आचरण से शब्द का सीधा सम्बन्ध है।

आचरण शब्द के अनुकूल होना चाहिए। उसमें दूरी हमेशा रहेगी। एक बात मैंने कही थी, आचरण पकड़ में है, शब्द पहुँच में है।

पहुँच को दिखानेवाला शब्द है।

पकड़ को व्यक्त करनेवाला आचरण है।

लेकिन दूसरी दिशा में नहीं है। कलकत्ते जाना है तो बम्बई की दिशा में जाने से कलकत्ता नहीं पहुँचेंगे। विचार पहले आयेगा, आचरण उसके पीछे-पीछे, विचार की दिशा में चलेगा; लेकिन आचरण हमेशा शब्द के पीछे रहेगा। यह आवश्यक है प्रगति के लिए कि शब्द हमेशा आगे-आगे चले।

जिसको मेरे आचरण को ही मान लेना हो माने।

लोकमान्य सुपारी खाते थे, मुझे भी सुपारी खाने का शौक था, तो मैंने कहा, लोकमान्य खाते हैं तो मैं क्यों न खाऊँ ? तो भाई बहाना किसलिए चाहिए। वे न खाते तो भी तो मैं खा सकता था।

दशरथ की तीन पत्नियाँ थीं, तो हमें भी तीन पत्नियाँ रखने में हर्ज क्या है ? यह सब कहने का तात्पर्य यह है कि हम महापुरुषों के उस आचरण को देखते हैं, जो हमारे अनुकूल होता है। इसमें विचार छूट जाता है। सारी रामायण पढ़ने के बाद क्या सीखा ?

धोखे से शत्रु को मारा जा सकता है। राम ने यह किया। इसमें कोई दोष नहीं है। पाप नहीं है। मर्यादा पुरुषोत्तम ने भी किया। दूसरा, स्त्री पर हथियार चलाया जा सकता है। राम ने ताटिका को मारा।

इस प्रकार से रामायण में से हम अपने अनुकूल आचरण निकाल लेते हैं जो अनुकूल नहीं है उसको नहीं लेते।

मैं इतना ही कह रहा हूँ कि हमारी मर्यादा से जो परे है, उसकी तरफ अगर आचरण हमारा जाता है तो प्रगति होती है।

गांधी चोटी रखता था। मैं भी चोटी रखता हूँ। इसमें कुछ है नहीं, लेकिन उसने पाखाना उठाने का काम किया। वास्तवमें इसमें गांधी था। यह मैं आउट लुक की बात आपसे कह रहा हूँ। दृष्टिकोण और भूमिका अर्थात् रोल इसको ही मार्क्सवादियों ने मुख्य माना है। रोल अर्थात् भूमिका।

द्वितीय महायुद्ध का एक उदाहरण है। पहले दिन जो साम्राज्यवादी युद्ध था दूसरे दिन हिटलर और स्टालिन में सन्धि होते ही वह लोक-युद्ध बन गया और जर्मनी भी लोक-युद्ध में शामिल माना गया--क्यों ?

उसका रोल--उसकी भूमिका बदल गयी थी।

यह दोनों चाहिए। भूमिका आवश्यक है, लेकिन भूमिका के अनुरूप चेतना चाहिए। यह चेतना चुने हुए मुट्ठीभर लोगों की नहीं, यह चेतना नागरिकों की होनी चाहिए। जैसी भूमिका हो उसके अनुकूल चेतना हो यह क्रांतिकारी परिवर्तन है।

नागरिकों में उनकी सही भूमिका के अनुरूप चेतना जगाने का प्रयत्न ही नागरिक विश्वविद्यालय की रूपरेखा का प्रमुख आधार होगा।

नागरिक विश्वविद्यालय की रूपरेखा तथा कार्यक्रम का एक प्रस्तावित चिन्तन

आज का जन-जीवन प्रज्ञा के अभाव में अस्तव्यस्त दिशा-विहीन एवं प्रगति-शून्य हो गया है। ऐसी स्थिति में मानव-जाति का कल्याण कैसे होगा?

इस प्रश्न के उत्तर की खोज करने पर सबसे पहले ध्यान आचार्यों की ओर जाता है। उनमें मानव-कल्याण के लिए चिन्तन करने की क्षमता छिपी हुई है। यदि उसे ही जाग्रत किया जाय, तो निश्चय ही कोई न कोई मार्ग स्पष्ट होगा। क्योंकि करुणा एवं प्रज्ञा से संयुक्त शक्ति जिसमें है वही आचार्य है। ये आचार्य समस्याओं के प्रति कैसे जागरूक हों?

सम्पूर्ण मानव-जीवन एक विषचक्र में फँस गया है अतः सम्पूर्ण नागरिक-जीवन को ही जाग्रत करने की आवश्यकता है। जब प्रत्येक नागरिक को ही जाग्रत होना है, तो कौन किसको जगायेगा? यह जागरण परस्पर बोध से ही सम्भव हो सकेगा। इस परस्पर बोध के लिए ही नागरिक विश्वविद्यालय की कल्पना की गयी।

नागरिक विश्वविद्यालय की भिन्नता एवं विशेषता

प्रचलित विश्वविद्यालय संस्थानिष्ठ तथा ग्रंथनिष्ठ होने के कारण प्रत्यक्ष जीवन से कटे हुए हैं। साथ ही जो प्रत्यक्ष जीवन से जुड़ते हैं, वे अध्ययन तथा ग्रंथ से कट जाते हैं। इस कारण शिक्षा और जीवन के बीच अनुबन्ध नहीं रह पाता।

नागरिक विश्वविद्यालय शिक्षा और जीवन के अन्तर्विरोध को दूर करके दोनों में तादात्म्य एवं सामंजस्य स्थापित करने का प्रथम तथा निश्चित कदम है। इस विश्वविद्यालय की आधारशिला जीवन-निष्ठा होगी, जिसकी पाठ्य-पुस्तक कोई ग्रन्थ न होकर नागरिक का समग्र नागरिक-जीवन होगा।

नागरिक विश्वविद्यालय की शिक्षण-प्रक्रिया

प्रत्येक नागरिक इसका विद्यार्थी होगा और जीवन के प्राप्त फल को सहज ढंग से दूसरों को बाँटनेवाला प्रत्येक व्यक्ति इसका आचार्य होगा। इसमें सीखने तथा सिखाने की प्रक्रिया दोनों साथ-साथ चलेगी। अतः प्रत्येक नागरिक इसका विद्यार्थी और आचार्य दोनों होगा। इसके लिए परस्पर विभूतिमय दर्शन से ही बोध प्राप्त किया जायगा। अतः शिक्षण-प्रक्रिया का आधार **'परस्परं बोधयन्तः'** होगा।